तत्वमाला

अर्थात्

जिनेन्द्रमत दर्पण—द्वितीय भाग

शीतलप्रसाद जैनी लखनऊ निवासी
द्वारा सम्पादित

भारत-जैन-महामंडल द्वारा प्रकाशित

तथा

प० सुदर्शनाचार्य्य, बी० ए०, के प्रबन्ध से
सुदर्शन प्रेस, प्रयाग
में मुद्रित।

सन् १९११ ई०

द्वितीय आवृत्ति १०००] [मूल्य ४ आना

आत्मा अनात्माना अनंत भावभेदने अवलं-बती अगाध ज्ञानीओने गम्य एवी स्याद्वाद शैलीथी तत्त्वनुं संपूर्ण ज्ञान तो सर्वज्ञ सर्वदर्शीने ज शक्य छे, परंतु यथामति-शक्ति-नवतत्त्वनुं स्वरूप जाणवुं सर्व मनुष्योने शक्य छे. तेनां स्मरण मननथी मनुष्योमां विवेकबुद्धि जागृत थाय छे, सम्यक्त्वनो लाभ थाय छे, अने कल्याणकारी आत्मज्ञाननो शुभ उदय थाय छे. तदुपरांत नवतत्त्वमां लोकालोकनां संपूर्ण स्वरूपनुं संक्षिप्त विवरण होइ साधारण बोधवाळी व्यक्तिओ पण आवश्यक तत्त्वज्ञान मेळवी द्रष्टिनी विशालता अने समभाव प्राप्त करी शके छे, के जेनां पूण्यप्रभावे आत्मज्ञाननो निर्मळ रस उद्भवे छे.

अनंत ज्ञानना अधिष्टानरूप श्री तीर्थंकर भगवाने ज्ञानप्रभावे लोकालोकना अनंत भाव अने भेदो जोया तथापि जनसमूहनां कल्याणार्थे

યોગ્ય, જ્ઞેય–જાણવા યોગ્ય અને ઉપાદેય–ગ્રહણ કરવા યોગ્ય.”

શ્રીમન્ મહાવીર ભગવાનના પ્રરૂપેલા શાસનમાં મતમતાંતરો પડવાનાં એક મુખ્ય કારણ રૂપે-ઉપાસક વર્ગની-તત્ત્વજ્ઞાન પ્રત્યેની ઉદાસીનતા અને માત્ર વિધિવિધાનરૂપ ક્રિયાકાણ્ડમાંજ થતી પ્રવૃત્તિ ગણી શકાય.

આ પૃથ્વીતલ પર વસતી માનવ મેદિની દોઢ અબ્જ (લગભગ) પૈકીની માત્ર તેર લાખ જેટલી શ્રમણોપાસક જૈન પ્રજા લેખીએ. તો તેમાંયે નવતત્ત્વને સારી રીતે જાણનાર ફક્ત ગણ્યા ગાંઠ્યા–વળકે આંગળીના વેઢાયે ગણી શકાય તેટલાજ હશે.

તત્ત્વજ્ઞાન સંબંધીની આ શોચનીય સ્થિતિને પ્રતાપેજ મતમતાંતરો સરજાય છે–એમ કહેનાર કે માનનારને આપણે ખોટા નહિ કહી શકીએ.

શ્રી નવતત્ત્વનાં પઠન-મનનથી પાંચ મહાવ્રતો

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सप्ततत्त्व	६	ध्यान	७१
जीवतत्त्व	७	धर्म ध्यान	७४
अजीवतत्त्व	१५	ध्यान का स्थान	७६
ज्ञानावर्णी कर्म	२१	ध्यान का आसन	७९
दर्शनावरणी कर्म	२६	प्राणायाम	८०
वेदनी कर्म	२८	प्रत्याहार धारणा	८३
मोहनी कर्म	३४	ध्येय	८४
आयु कर्म	४१	ध्यान और फल	८५
नाम कर्म	४५	निराकार का ध्यान साकार के द्वारा हो सकता है	८७
गोत्र कर्म	५४	पिंडस्थ ध्यान मार्ग	८८
अन्तराय कर्म	५५	पदस्थ ध्यान	९३
अन्य ४ द्रव्य	५७	रूपस्थ ध्यान	९८
आस्रव तत्त्व	६०	रूपातीत ध्यान	९९
बंध तत्त्व	६१	मोक्ष तत्त्व	१०२
संवर तत्त्व	६३		
निर्जरा तत्त्व	६५		

क्षणभंगुर मानेला छे एथी जैनदर्शनना जीव तथा अजीवरूप मुख्य तत्त्वोनो आ दर्शनमां अभाव छे

२ नैयायिक दर्शन १६ तत्त्वो माने छे. १ प्रमाण २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२ वितंडा, १३ हेत्वाभास, १४ छळ, १५ जाति अने १६ निग्रहस्थानथी. तेमां आत्यंतिक दुःखध्वंस एज मोक्ष एवी मान्यता छे. मुक्तात्माने दुःख नथी होतुं, तेम बुद्धि सुख आदि नव विशेष गुणोनो पण उच्छेद थाय छे. एथी आत्मानी जड दशानेज नैययिको मोक्ष माने छे.

३ सांख्यमत २५ तत्त्वो माने छे ते नीचे प्रमाणेः—१ पुरुष, २ प्रकृति, ३ महत्, ४ अहंकार, ५-९ पांच ज्ञानेंद्रिय, १०-१४ पांच कर्मेन्द्रिय, १५ मन, १६-२० पांच तन्मात्र अने २१-२५ पांच महाभूतो. तेओ उपरोक्त २५ तत्त्वोनां ज्ञानद्वारा

उत्तरमीमांसा नामक २ जेद छे. पूर्व मीमांसको कर्मकांममां अने उत्तरमीमांसको ब्रह्ममां एम एकेक तत्त्वज माने छे.

चार्वाक एटले नास्तिक दर्शन—ते मात्र १ पृथ्वी २ पाणी, ३ तेज, ४ वायु अने ५ आकाश एम ए पांच तत्त्वोने माने छे. एना संयोगे चैतन्यवान् आत्मा उद्भवी पुनः तेमांज विलय पामे छे. एटले मोक्ष वगेरेनी आकांक्षाउं मिथ्या गणी मात्र पार्थिव वैजवोनी भोगिकी क्रियाउंमांज कृतकृत्यता समजे छे.

आ प्रमाणे उपर वर्णवेला सर्व दर्शनोना वास्तविकतत्त्वोनो जैनदर्शनना कथित तत्त्वोमां समावेश थाय छे, तेम समजाववानुं आटलुं जाण्या पछी जाग्येज [illegible]

जैनदर्शनः—ए मुख्य जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध अने मोक्ष ए

भूमिका

पाठको ! आपको विदित होगा कि तत्वमाला नाम का एक लेख जैनगजट से अङ्क ३, ता० १ दिसम्बर १६०४ से निकल कर गजट के अङ्क २७, ता० ८ जुलाई १६०५ में समाप्त हुआ है। गजट के बहुत से पाठकों ने यह इच्छा प्रकट की कि यह लेख पुस्तकाकार छपवा दिया जाय तो तत्व भेद जानने वालों को बहुत लाभ प्राप्त होगा इसलिये इसकी १००० कापियां प्रथम आवृत्ति में सन् १६०५ में प्रकाशित हुई थीं और उन से पाठकों ने लाभ उठाया तथा दूसरी आवृत्ति मुद्रित होने के लिये भारत जैन महामंडल को उद्यत किया।

इस पुस्तक में जैन धर्म के मूल सात तत्वों का वर्णन श्री तत्वार्थ सूत्र की अर्थबोध टीका के अनुसार इस रीति से दिखलाया गया है कि हमारे अल्पज्ञानी नव युवकों को समझ में भले प्रकार आ जायगा। जिनेन्द्रमतदर्पण प्रथम भाग जो प्रथम छपवाया गया था, उसमें भी एक स्थान पर यह प्रतिज्ञा की गई थी कि सात तत्वों को दूसरे भाग में प्रगट करेंगे। इसीलिये इसका नाम जिनेन्द्रमत दर्पण द्वितीय भाग रक्खा गया है। दूसरी आवृत्ति में यथा आवश्यक संशोधन कर दिए गए हैं।

धातां आत्मा साथनां ८२ प्रकारनां अशुभ कर्मो, तथा तेने भोगववाना प्रकारनुं विवेचन करेल छे.

५ आश्रवमां-कर्मागमननां ४२ कारणो विविध प्रकारे वर्णव्यां छे.

संवरमां-चालु समयथी मांडी नवां कर्मोने लागता अटकाववा ५७ भेदो उपाय दर्शाव्या छे.

७ निर्जरामां-पूर्वबद्ध कर्मोना क्षय माटे १२ प्रकारनी तपश्चर्या समजावी छे.

८ बंधमां आत्मा साथे कर्मना संबंधना चार प्रकार तथा ते दरेकना पुनः आठआठ प्रकारनु वर्णन आप्युं छे.

९ मोक्षमां मोक्ष एटले शुं? तथा अनेक प्रकारना जीवोपैकी कया जीवो तेना अधिकारी छे, ते तथा सिद्ध-मुक्त जीवोनुं स्वरूप वर्णव्युं छे.

वांचक समक्ष आ ग्रंथनी आठमी आवृत्ति छपाइ बहार पडे छे, तेज तेनी उपयोगिता तथा

आशा है हमारे भाई इस पुस्तक को अधिक पढ़ पढ़ कर लाभ उठावेंगे, तथा पाठशाला के विद्यार्थियों में इसका प्रचार करेंगे और स्त्रियों तथा कन्याओं को भी पढ़ने देंगे। और यदि मेरी अल्प बुद्धि के कारण मेरे समझने में कहीं त्रुटियां रह गई हों तो मुझको क्षमा करते हुए सूचित करेंगे जिसमें तीसरी आवृत्ति में रहे सहे दोष भी निकाल दिए जांय॥

ता० २०-१-११

जाति हितैषी
शीतलप्रसाद ब्र०



केटलाएक ज्ञाईउं किंवा वहेनो मुख-पृष्टपरनां मात्र नामपरथी किम्मतनो मुकावलो करी श्रेष्ट-नेष्टनां प्रमाणपत्रो आपी देवानी रुचि वाळा होय छे. तेउने एकवार आ ग्रंथ पूरेपूरो वांची जवा अमारी नम्र छतां मजबुत विनंती छे.

छवटे प्रस्तावना संबंधी उल्लेख पूर्ण करतां पहेलां विनंति छे के–जोके ग्रंथनी शुद्धि अर्थे पूर्ण काळजी राखवामां आवी छे, तथापि दृष्टि दोषथी रहेल जूलोने वांचकवर्ग क्षंतव्य गणशे. तेमज सिद्धांत विरुद्धनी कोइ वाबतोने सुधारी वांचशे एम इच्छीशुं. अलं विस्तरेण.

लि०

वारीआ बिल्डींग
पायधुनी, मुंबई.
ता. ११–१–३०

हीरजी घेलाज्ञाई पदमशी
ना जयाजनेंद्र.

जिनेन्द्रमत दर्पण

दूसरा भाग

तत्वमाला ॥

भाई साहबान्—क्या यह बात सत्य है ! कि

"श्रोत्र श्रुतेनैव न कुडलेन, दानेन पाणिर्नतु कङ्कणेन । विभातिकाया खलु सज्जनानाम् परोपकारेण न चंदनेन" ॥

अर्थात् कानों की शोभा कुंडल पहनने से नहीं परन्तु शास्त्र सुनने से है, हाथ की शोभा कंकण से नहीं परन्तु दान देने से है, इसी तरह सज्जनों के शरीर की शोभा चंदन लगाने से नहीं परन्तु परोपकार से है ॥

इस प्रश्न का उत्तर कुछ शीघ्रता से देने की आवश्यकता नहीं । थोडी देर पश्चात बैठ चित्त की वृत्ति को सर्व आकर्षणों से रोक अपने अंतरंग में वादानुवाद करके निर्णय कीजिये और तब भले प्रकार साहस की कमर बांध निर्भय हो खुले स्थान में आकर बहुत बडी ध्वनि से इस प्रश्न का उत्तर कह दीजिये ॥

पाठक गण—है कि नहीं, क्योंकि बिना विचार कहना केवल कहना ही कहना है । यदि विचार पूर्वक कहा होगा तो क्या सच्चा श्रद्धा पूर्वक कहना न होगा । बस महाशयो

षड्द्रव्यनुं विशेष स्वरूप ८१
छ द्रव्यमां परिणामादि विभागनुं यंत्र. ८५
कालद्रव्यनुं विशेष स्वरूप ८७
धर्मास्तिकायनी मुख्यतानां कारणो तथा शंका समाधान ९१
अजीवना ५६० भेदनुं यंत्र ९२

३—पूण्यतत्त्वविचार.

पूण्यतत्त्वना बंध-मोक्षना भेद ९४
त्रसदशक-नामकर्मना दस प्रकार १०३

४—पापतत्त्वविचार.

अढार प्रकारे बंधातां पापनां नाम १०७
ज्ञानावरणीयादिक व्याशी प्रकृतिए भोगवातां पापनां नाम १०८
स्थावर दशक-नामकर्मना दस प्रकार ११३

५—आश्रवतत्त्वविचार.

बेतालीश भेदे आश्रवतत्त्वनुं स्वरूप १२७
द्रव्याश्रव तथा भावाश्रवनु स्वरूप १२८
पच्चीश क्रियाओनां नाम तथा लक्षण १२९
[illegible]श क्रियाओनां गुणस्थान १४४

मैं तो यही विश्वास करता हूं कि आप अपने मुक्त कंठ से यही कह उठेंगे "निःसन्देह इस श्लोक का वचन बहुत ठीक है" ॥

यदि यही उत्तर आपका होगा तो हम भी सहमत हैं। पर हमें शब्द "क्यों" के उत्तरों का प्रकाश करना भी आवश्यक है। क्या यह कान कुंडल पहनने के लिये नहीं? तब फिर कुंडलों का होना निरर्थक है। नहीं नहीं कुंडल पहनाना इस कर्ण की बाह्य शोभा को दिखलाना है। पर जब यह कर्ण कुंडल तो पहन लें पर हमारे हितकारी कार्य की ओर अपने विषय को न लगा कर अहित में प्रवर्त्तें तो क्या वह कर्ण उस सोने के घड़े के तुल्य नहीं है कि जो मल से पूरित हो अथवा उस कर्ण की प्रभा उस स्त्री के तुल्य नहीं है जो कि शृंगार रस में भीजी होने पर कुशील के कीचड़ से लिप्त हो। पर महाशयो! ऐसे कर्ण को दोषी ठहराने के समय कुछ हमें और भी वर्णन कर देना पड़ेगा कि हमारा कौन कार्य हितकारी और कौन अहितकारी है। पाठकगण! कृपया इन दो बातों का भी ध्यान करें—हमारी सम्मति इस विषय में यह है कि जगत मे जो कार्य्य हमें वास्तव मे सुख पहुंचाने वाला व सुख के मार्ग मे ले आने वाला है, वही हितकारी और इससे विरुद्ध अहितकारी है॥

अब यह भी निर्णय कीजिये कि सुख क्या है। जहां तक बुद्धिमानों ने विचार किया है सुख उस अवस्था को कहते हैं कि जिस समय आकुलता का अभाव हो क्योंकि जहां

"पहेलुं" प्रायश्चित्त तपना दस भेद २१०
"बीजुं" विनयतपना सात भेद २१२
"त्रीजुं" वैयावच्च तपना दस भेद २१८
"चोथुं" स्वाध्याय तपना पांच भेद २१९
"पांचमुं" ध्यान तप—आर्त्त, रौद्र, धर्म अने शुक्ल ए चार भेद २२०
"छट्ठुं" कायोत्सर्ग तपना बे भेद २२५

८—बंधतत्त्वविचार.

मोदक दृष्टांते कर्मबंधना चार भेद २२८
दृष्टांतपूर्वक आठे कर्मोनो स्वभाव २३१
आठ कर्मोनी उत्तरप्रकृतिनी संख्या २३८
आठ कर्मोनो उत्कृष्ट स्थितिबंध २४०
आठ कर्मोनो जघन्य स्थितिबंध २४३
आठ मूळकर्मनी स्थिति तथा अबाधादर्शक यंत्र २४५
रसबंधनुं स्वरूप २४५
प्रदेशबंधनुं स्वरूप २४९

९—मोक्षतत्त्वविचार.

मोक्षतत्त्वनां नव भेदनां नाम प्रभेदो सहित २५२
"सत्पदप्ररूपणा रूप" प्रथम भेदनो अर्थ २५६

आकुलता, घबड़ाहट, चिन्ता, शोक, क्रोध, लोभ, माया, इत्यादि उपस्थित होंगे वहां सुख कहां से हो सकता है। इन्द्रियों के विषयों से माना हुआ सुख कुछ आकुलता के अभाव मे जब तक उस विषय की स्थिरता है और अपना चित्त केवल उसी विषय में लौलीन है तब तक है। पश्चात् फिर अन्य विषय ग्रहण करने की आकुलता बाधित करती है। जैसे किसी को सेब खाने की इच्छा हुई अब जब तक सेब का स्वाद जबान को न मालूम होगा तब तक आकुलता रूप दुःख है। यदि पुन्य योग से हमारी इच्छा के अनुसार सेब आ भी गया (क्योंकि जगत के प्राणी बहुत प्रकार के विषयों के पाने की कामनाएं किया करते हैं पर उनकी एक भी इच्छा फली भूत नहीं होती) और उसने भक्षण भी किया परन्तु उसके भक्षण करते २ ही दूसरी किसी वस्तु की इच्छा हुई कि तुरन्त दुःख पैदा हो गया। अब जबतक यह इच्छा पूर्ण न होय तब तक यह दुखी है। इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों द्वारा सुख को माना ऐसा है कि जैसे कोइ अनेक रोगों से पीड़ित होय और उसका एक रोग शांत हुआ हो इतने ही में यह रोगी उस के शांत होने से अपने को सुखी मान लेवे। लेकिन यदि ठीक ठीक विचारियेगा तो यही कहना होगा कि जब तक यह रोगी सर्व रोगों से मुक्त न हो जाय कदापि सुखी नहीं है। इसी तरह संसारी प्राणियों के अनेक असंख्य इच्छाओं के रोग लगे हुए हैं। जब एक इच्छा रूपी रोग किसी शुभ कर्म वश से शांत होता है तो यह प्राणी अपने को सुखी मान लेता



है पर वास्तव में सुखी वही होगा जिस की सर्व इच्छाओं के रोगों की शांति हो जायगी। इसी लिये हमको वह यत्न करना योग्य है जिस में हमें विषयों की इच्छाएं वाधित न करें। बस यही सुख मार्ग पाने का सीधा उपाय है। पाठकों ने भले प्रकार जैन शास्त्रों से निर्णय किया होगा कि बड़े बड़े महान पुरुष जैसे तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदिक पूर्ण पुन्य योग से इच्छित विषय प्राप्त करने का यत्न रखते थे तथापि इच्छाओं के रोगों से उनको मुक्ति उस यत्न से नहीं हुई। उनको इन रोगों से छूटने के वास्ते परिग्रह का भार छोड़ वन में जा नग्न दिगम्बर हो तप करना पड़ा। अपने चित्त को अपने आप में विठाना पड़ा। तब उनके पूर्ण यत्न से वे इच्छाओं के रोगों से मुक्त हुए और तब तीन लोक की वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सर्व प्रकार से सुखी होते भए। बस वास्तव में हम प्राणियों को भी वही मार्ग धारण करना उचित है अर्थात् जितेन्द्रिय हो अपने आत्मद्रव्य को जानना उचित है। अपने आत्मद्रव्य रूपी फटिक मणि में से कर्म रूपी मैल को निकाल डालना उचित है और जब ऐसा हम करेंगे तब ही हमारे उस फटिक मणि मे तीन लोक की वस्तुओं के सर्वगुण पर्य्याय झलकेंगी और किसी चीज़ के विषय जानने की इच्छा न पैदा होगी।

पूर्ण यत्न सुखी होने का तो मुनिपद ग्रहण से है पर जब तक ऐसा न हो सके तब तक गृहस्थी मे यथाशक्ति यत्न करता रहे—बस अपने कानों को ऐसी ध्वनि सुनाना कि जो

एगविहदुविहतिविहा,
चउव्विहा पंचछव्विहा जीवा ॥
चेयणतसइयरेहिं,
वेयगईकरणकाएहिं ॥ ३ ॥
एगिंदिय सुहुमियरा,
सन्नियरपणिंदित्रा य सबि-
तिचउ ॥ अपजत्ता पजत्ता,
कमेण चउदस जियठाणा ४
नाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तहा ॥

चित्त को प्रमाद से छुटाकर उत्तम में, जुआ आदि सात व्यसनों से छुटाकर धर्म अर्थ काम मोक्षरूप चार पुरुषार्थ के साधन में, क्रोध मान माया लोभ की तीव्रता से बचाकर विवेक के मार्ग में, स्वार्थीपने की आदत से बचाकर कुटुम्ब रक्षण, जाति या धर्म रक्षण, देश हितरक्षण व जगत सुखदायक कार्यो की ओर फेर देवे यही हमारा हित है। सो इसी लिये न्यायकार कहते हैं कि हे भाइयों कर्णों की शोभा कुंडल पहने से नहीं किन्तु हितकारी वार्ता के सुनने से है—इसी तरह वह हाथ जोकि निर्ममत्व हो सर्व त्याग कर दे अथवा जो परोपकार में अपने हाथ से धन को दान करे वही हाथ शोभनीक है। इसी तरह सज्जन और साधु पुरुषों के शरीर निश्चय से चन्दन लगाने से शोभनीक नहीं होते किन्तु यदि वह अपने शरीर से परोपकार करें तभी शोभनीक हैं॥

भाइयो! जो आप मि० गोखले, दादा भाई नौरोजी, मि० ताता, मि० सुरेन्द्रनाथ बनर्जी मि० मदनमोहन मालवीय, मि० राज्यम अहमद इत्यादि परोपकारियों की प्रशंसा करते हैं वह उनके परोपकारता में अपने तन को लगाने ही के कारण करते हैं। कुछ सुन्दर पगडी और कपड़े पहनने से नहीं। इसी तरह हमारी जैन जाति के भद्र पुरुषों (जेन्टिलमैन) की शोभा उसी समय है जब वे अपने आप को जाति व धर्म की उन्नति में लगा देवें। कुछ सुंदर कपड़े पहनने पगड़ी बांधने से नहीं, कुछ पतलून कोट पहनने से नहीं कुछ वृथा प्रलाप करने से नहीं॥

॥ इति जीवतत्त्वम् ॥

धम्माऽधम्माऽगासा,

तियतियभेया तहेव अद्धा य

खंधा देस पएसा,

परमाणु अजीव चउदसहा ॥८॥

धम्माऽधम्मा पुग्गल,

नह कालो पंच हुंति अजीवा।

चलणसहावो धम्मो,

थिरसंठाणो अहम्मो अ ॥९॥

अवगाहो आगासं,

अध्याय दूसरा

मोक्षतत्त्व

भाइयो ! श्रीमान् उमास्वामी आचार्य* ने मोक्ष मार्ग का स्वरूप अपने रचित श्री तत्त्वार्थ सूत्र जी में जैसा वर्णन किया है यही मार्ग अनादि काल से चला आया है। मोक्ष मार्ग वही मार्ग है जो कि जीव को दुःखों से बचाकर ऐसी दशा में धर दे कि जिस दशा में रह कर यह पूर्ण आनन्द अनंत काल तक भोगता रहे। पूर्ण आनन्द क्या वस्तु है और क्यों इस के प्राप्त करने की आवश्यकता है यह वर्णन पहले किया जा चुका है तथापि यहां पर भी उसकी किंचित परिभाषा दी जाती है॥

पूर्ण आनन्द वह स्वाधीन निराकुल आनन्द है जोकि अपने जीव का निज स्वभाव है। और उसके पाने की आवश्यकता इस प्रयोजन से है कि यह जीव उस दशा में पूर्ण ज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है और यह नियम है कि सुख ज्ञान पूर्वक है। जिस व्यक्ति को एक वस्तु का हाल जब तक नहीं मालूम था वह दुखी था जब उसको वह हाल मालूम हो गया वह सुखी हो गया। इसी तरह पूर्ण ज्ञानी पूर्ण सुखी है। क्योंकि ऐसे जीव के लिये कोई पदार्थ शेष नहीं रहा कि जिसके जानने की आकुलता हो। आकुलता के अभाव से वह पूर्ण ज्ञानी सदा सुखी है—बस इसी पूर्ण ज्ञानी होने का जो उपाय है वही मोक्ष मार्ग है।

---

* यह आचार्य सम्वत् १०८ में हुए हैं।

आवलिया इग मुहुत्तम्मि १९
समयाऽवली मुहुत्ता,
दीहा पक्खा य मास वरिसा य
भणिओ पलिआ सागर,
उस्सप्पिणी सप्पिणी कालो॥
परिणामि जीव मुत्तं,
सपएसा एग खित्त किरिआ य
णिच्चं कारण कत्ता,
सव्वगय इयरअप्पवेसे ॥१४॥
॥ इत्यजीवतत्वम् ॥

यह मार्ग तीन भेद रूप में है अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्य ग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र अर्थात् अच्छी तरह विश्वास करना, अच्छी तरह जानना और अच्छी तरह आचरण करना—किनको? तत्वों को। तत्व क्या वस्तु है? इस शब्द का अर्थ सत्यता है और यहां पर भी तत्व उसी को कहते हैं जो सत्य सत्य वस्तु मोक्ष मार्ग में प्रयोजन भूत हैं अर्थात् वह वस्तु जिनके कि जाने बिना मोक्ष मार्ग नहीं ग्रहण किया जा सकता॥

तत्व सात-७ हैं—

जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष॥

अध्याय तीसरा

जीव तत्व

महाशयो! **जीव** से निश्चय करके मतलब उस चीज से है जो कि जीती थी अर्थात् चैतन्य रूप में थी, जीती है याने इस वर्तमान समय में भी जी रही है और जीवेगी याने आगामी जीती रहेगी। प्रयोजन यह है कि ज्ञान जो एक गुण है वह जीव ही के पास है और कहीं नहीं। जिस चीज में जीव नहीं होता उसको जड़ कहते हैं जड़ में समझने व पहचानने की ताकत नहीं। यह ताकत एक **जीव** ही के पास है॥

यह बात निर्विवाद सिद्ध है, हर एक मत व हर एक बुद्धिमान अच्छी तरह समझता है कि जीव जिसको रूह कहते हैं उसका काम "जानने" का है। जिस वक्त यह शरीर

सुस्सर-आइज्ज-जसं,
तसाइदसगं इमं होइ ॥ १७ ॥

॥ इति पुण्यतत्वम् ॥

नाणंतराय दसगं,
नव बीए नीअसायमिच्छत्तं ॥
थावरदस नरयतिगं,
कसायपणवीस तिरियदुगं १८
इग-बि-ति-चउ-जाईओ,
कुखगइ उवघाय हुंति पावस्स
अपसत्थं वण्णचउ,

में रहता है यह अपने शरीर के द्वारा से किसी चीज को छूकर किसी का सवाद लेकर, किसी को सूंघ कर, किसी को देख कर और किसी को सुन कर उन का हाल मालूम करता है। जिस वक्त यह शरीर में नहीं रहता, शरीर अकेला किसी चीज़ का हाल जानने को असमर्थ हो जाता याने नहीं जान सक्ता है ॥

अब यहां पर कोई कोई मतवाले यह शंका करते हैं कि जीव कोई जुदी चीज़ नहीं हैं और वे कहते हैं जैसा कि इस छंद में वर्णित है ॥

चौपाई

भू जल अग्नि पवन नभ मेल ।
पांचो भए चेतना खेल ॥
त्यों गुड़ आदिक तें मद होय ।
मद ज्यो चेतन थिर नहि कोय ॥

याने ज़मीन, पानी, आग, हवा और आकाश के मिलने से चेतना याने जीव पैदा हो जाता है जैसे गुड़ वगैरह चीज़ों के मिलने से मदिरा याने शराब बन जाती है जिसका काम नशा है ॥

इसके जवाब में जीव मानने वाले यह दोहा कहते हैं—

दोहा

पांचों जड़ ये आप हैं जड़ ते जड़ ही होय ।
गुड़ आदिक तें मद भयो, चेतन नाही सोय ॥

काइत्र अहिगरणीया,
पाउसिया पारितावणीकिरिया
पाणाइवाइ रंभित्र,
परिग्गहिया मायवत्तीत्रा २२
मिच्छादंसणवत्ती,
अपच्चक्खाणी य दिठी पुठित्र
पाडुच्चित्र सामंतो,-
वणीत्र नेसत्थि साहत्थी २३
आणवणि वित्रारणीत्रा,
अणाभोगा अणावकंखपच्च-

भू जल पावक पौन नभ, इन्हीं रसाइ जान।
पर्यों नहिं चेतन ऊपजे, यह मिथ्या सरधान॥

यानी जमीन वगैरह जिन पाचों के मिलने से कहते हो कि जीव पैदा होता है सो ये पाचों ही जड़ हैं जड़ चीज से जड़ पैदा होगी चेतन नहीं गुड़ वगैरह के मिलने से मदिरा रूपी पर जड़ चीज की पैदाइश हुई। उस मदिरा में अपने आप नशा कुछ नहीं है। जब वह पी जाती है तो पीने वाले को नशा मालूम भी होता है और नहीं भी मालूम होता है सो इस तरह से तो जगत में यह कायदा ही है कि कई जड़ चीजों के मिलने से एक दूसरे प्रकार की जड़ चीज पैदा हो जाती है जिसका असर कुछ न कुछ होता ही है जैसे पानी, माटा और घी अग्नि के जरिये से मिल कर हलवा हो जाता है जो कि अपना एक खास असर रखता है। और इसलिये रसोई में मिट्टी पानी आग, हवा और आकाश पाचों चीजें होती हैं पर उनमें सिवाय जड़ चीजों के कोई चेतन चीज पैदा नहीं हो सकती है—

यह बात तो साय से (विज्ञान) के ज़रिये से भी प्रमाणित है कि जिन चीजों में पुद्गल (Matter) है उनके मिलने से अलग करने से पुद्गल (Matter) ही हो जायगा। पुद्गल में तरह तरह की ताकतें मौजूद हैं। एलेक्ट्रिसिटी (बिजुली) आदिक सब पुद्गल ही की पर्याय हैं। इनमें कुछ भी चेतना नहीं। जान का कोई सबूत नहीं होता। पुद्गल की मूरत है। मूर्तिक से अमूर्तिक वस्तु नहीं बन सकती है। पुद्गल का छोटा से छोटा टुकड़ा (जिसका और टुकड़ा नहीं

कायगुत्ति तहेव य ॥ २६ ॥

खुहा पिवासा सी-उण्हं,

दंसा चेला रइ-त्थिओ ॥

चरिआ निसिहिया सिज्जा,

अक्कोस वह जायणा ॥२७॥

अलाभ-रोग-तणफासा,

मल-सक्कार-परीसहा ॥

पन्ना अन्नाण सम्मत्तं,

इअ बावीस परीसहा ॥२८॥

खंती मद्दव अज्जव,

हो सकता) भी मूर्तिक होगा। यदि हम यह मानें कि मिट्टी, पानी, आग, हवा के मिलने से जीव होता है और एक एक का इनमें से एक एक ही छोटे से छोटा टुकड़ा आपस में मिल कर जीव हो जाता हो। तब भी इन पांच टुकड़ों से बनी चीज़ मूर्तिक ही होनी चाहिये, अमूर्तिक नहीं। मूर्तिक की तौल भी होती है किन्तु इस अमूर्तिक वस्तु जीव में कोई तौल नहीं—एक जीवधारी का शरीर उसके मरते समय तौला जाय और फिर जीव न रहे तब उसी शरीर को तौलो बशर्ते कि उसके शरीर से सम्बन्ध रखने वाला एक भी परमाणु (ज़र्रा) (Matter) पुद्गल का अलग न हो। तो दोनों की तौल बराबर होगी।

यह जीव अनादिकाल का है कभी इसका नाश नहीं होता॥

चौपाई ॥

बालक सुख मैथुन को लेय।
दाबे अचे दूध पिवेय॥
जो अनादि को जीव न होय।
सीख विना क्यों जाने सोय॥
मर के भूत होत जे जीव।
पिछली बातें कहें सदीव॥
सिरचढ़ि बोले निज घर आय।
ताते हंस अमर ठहराय॥

भावार्थ—छोटा लड़का जन्मतेही अपनी माता को पहचान कर दूध पीने लगता है। शरीर में दुख मालूम होते ही रो

न्नावेत्र्यक्वा पयत्तेणं ॥ ३१ ॥
सामाइ त्र्यत्थ पढमं,
छेत्र्योवठावणं न्नवे बीत्र्यं ॥
परिहारविसुद्धीत्र्यं,
सुहुमं तह संपरायं च ॥३२॥
तत्तो त्र्य त्र्यहक्खायं,
खायं सव्वंमि जीवलोगंमि ॥
जं चरिऊण सुविहित्र्या,
वच्चंति त्र्ययरामरं ठाणं ॥३३॥
॥ इति संवरतत्वम् ॥

देता है, दूसरे जो जीव मर कर भूत आदिक नीच देव होते हैं वे कभी किसी के सिर चढ़ के पिछली बातें कहते हैं इत्यादि दृष्टान्त इस बात के प्रमाण हैं कि, जीव अनादि, अनन्त अविनाशी, पुद्गल से भिन्न कोई अमूर्तिक वस्तु है। मूर्तिक पुद्गल से इसका निश्चय से सम्बन्ध नहीं है—इस जीवका लक्षण 'जानना' 'देखना' है। लेकिन संसारी जीवों के ज्ञान दर्शन स्वभाव का प्रगटपना बहुत कम है इस से संसारी जीवों का जानपना इन पाँच इन्द्रिय तथा मन के द्वारा होता है। जैसे की दृष्टि ठीक न हो तो उसको देखने के लिये चश्मा लगाने की आवश्यकता होती है उसी प्रकार हमारे जानपने का स्वभाव जब तक निर्मल नहीं तब तक जानपने के लिये सहायता की आवश्यकता होती है—यहां पर यह शंका होगी कि जब जीव वस्तु का स्वभाव जानना का है तब और सहायताओं की क्या आवश्यकता है—इसका समाधान इस प्रकार है कि संसारी जीवों के स्वभाव अनादि काल से किसी प्रकार के मल से पूरित हैं जो कि इनका अपने स्वाभाविक कार्य के करने में बाधा करते हैं। ये मल क्या हैं इसका वर्णन अजीव और आश्रव तत्व में किया जायगा।

यहां पर केवल जीव तत्व ही वर्णन है।

इसी जीव तत्व के विषय में एक कवित्त यह पवित्र है।

सवैया

जीव सदा उपयोग मई, निरमूरति भावनि का करना है।
देह प्रमान रहो। भुगता भव नाम रमै सिध का मरना है॥

झाणं उस्सग्गो वि अ,
अब्भिंतरओ तवो होइ ॥३६॥

॥ इति निर्जरातत्वम् ॥

पयइ सहावो वुत्तो,
ठिइ कालावहारणं ॥
अणुभागो रसो णेओ,
पएसो दलसंचओ ॥ ३७ ॥

पड-पडिहार-सि-मज्ज-,
हड-चित्त-कुलाल-भंडगारीणं
जह एएसिं भावा,

ऊरध चाल सुभाव विराजत नौ अधिकारनि को धरना है।
सो सब भेद बखान करूँ शरधान करो भ्रम को हरना है ॥२॥

सवैया ३१

इन्द्री पांच बल तीन श्वास आव दस प्राण मूल चार इन्द्री बल स्वास आव मानिये। पूरब जीवै था अब जीवै आगे जीव होगा पई प्राण सेती विवहार जीव जानिये ॥ सुख सत्ता बोध और चेतन निहचै प्राण, शाश्वतो सुभाव तीनकाल में बखानिये। विवहार निहचै स्वरूप जान सरधान ऐसे जीव वस्तु लखै सो सुखी पिछानिये ॥

भावार्थ—जीव के मुख्य करके ६ विशेषण है (१) सदा जीव है अर्थात् तीनों काल में जीता है (२) उपयोगमई याने ज्ञान दर्शन का धारी है (३) अमूरत है पुदगल की ऐसी कोई मूरत (material figure) नहीं है (४) कर्त्ता है याने व्यौहार से कर्मों का कर्त्ता है निश्चय से अपने ही भावो का कर्त्ता है (५) देह प्रमाण याने जिस देह मे जाता है उसी देह के प्रमाण सिकुडता व फैल जाता है (६) भोक्ता है याने व्यवहार से अपने ही किये हुए कर्मो का फल आप भोगता है। निश्चय से अपने स्वभाव को भोगता है (७) संसारी है अर्थात संसार में घूमने वाला है (८) सिद्ध है अर्थात संसार से रहित शिवरूप है (९) ऊर्ध्व स्वभाव धारी है याने अग्नि की लौ के समान ऊंचा चलने का है स्वभाव जिस का। व्यवहार में जीव वह है जिसके कम से कम ४ प्राण और ज्यादा से ज्यादा १० प्राण होते है।

मोहणिए वीस नामगोएसु ॥
तित्तीसं अयराइं,
आउठिइबंध उक्कोसा ॥४१॥
बारसमुहुत्त जहन्ना,
वेयणिए अट्ठ नामगोएसु ॥
सेसाणंतमुहुत्तं,
एयं बंधट्ठिईमाणं ॥ ४२ ॥
॥ इति बंधतत्त्वम् ॥
संतपयपरूवणाया,
दव्वपमाणं च खित्त फुसणाय॥

एक इन्द्री वाले जीवों के ४ प्राण याने स्पर्श इन्द्री शरीर का बल, आयु और श्वासोच्छ्वास होते हैं॥

दो इन्द्री वाले जीवों के ६ प्राण याने पहले कहे हुओं से रसना इन्द्री और वचन बल ज्यादा होता है॥

तीन इन्द्री वाले जीवों के ७ प्राण याने एक घ्राण (नाक) इन्द्री ज्यादा होती है।

चार इन्द्री वाले जीवों के ८ प्राण याने एक चक्षु (आंख) इन्द्री ज्यादा होती है।

पांच इन्द्री वाले जीव दो तरह के होते हैं एक मन वाले दूसरे मन बिना—

मन रहित पंचेन्द्री जीवों के ९ प्राण याने एक कर्ण इन्द्री ज्यादा होती है। मन सहित पंचेन्द्री जीवों के १० प्राण याने एक मन बल ज्यादा होता है।

और निश्चय कर जीव वह है जिसके सदा ज्ञान दर्शन सुख पाया जाय-

यहां पर व्यवहार और निश्चय दो शब्द का इशारा समझाया गया है कि निश्चय उसे कहते हैं जो कि वस्तु के असली हाल को कहे। व्यवहार उसे कहते हैं जो कि असली हाल को न कहकर, किसी और चीजों के सबब से जो तरह २ का हालतें हों उनको कहे॥

जीव का जो ज्ञान स्वभाव है उसके ज्ञान स्वभाव के पांच भेद हैं प्रधान मतिज्ञान श्रुति ज्ञान अवधिज्ञान मन पर्यय ज्ञान, और केवल ज्ञान। इन में से केवल ज्ञान जिस वक्त जीव के स्वभाव में होता है उस समय यह जीव स्वयं बिना किसी

नरगइ-पणिंदि-तस-भव,-
सन्नि-अहक्खाय-खइअसम्मत्ते
मुक्खो णाहार-केवल,-
दंसण-नाणे न सेसेसु ॥४६॥
दव्वपमाणे सिध्धा,-
णं जीव दव्वाणि हुंति णंताणि ॥
लोगस्स असंखिज्जे,
भागे इक्को य सव्वेवि ॥ ४७ ॥
फुसणा अहिआ कालो,
इग सिद्ध पडुच्च साइओणंतो ॥

और वस्तु की मदद के तीन लोक की सब चीजों को जान लेता है। अवधि ज्ञान और मन पर्यय ज्ञान के होने पर इस जीव के जानने की शक्ति में थोड़ी मदद और चीज़ों की आवश्यकता होती है इसी लिये इन दो ज्ञानों को कुछ प्रत्यक्ष भी कहते हैं।

किन्तु मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान यह दो ज्ञान विना और चीज़ों की मदद के बिलकुल नहीं होते। यह दो ज्ञान एकेन्द्री जीव से लेकर मन सहित पंचेन्द्री जीव तक सब जीवों के कमती बढ़ती पाये जाते हैं॥

अवधि ज्ञान जन्मते ही देवनारकी और तीर्थंकरों के पाया जाता है लेकिन औरों को इसके पाने के लिये आत्म-ध्यान करना होता है। मन पर्य्यय ज्ञान और केवल ज्ञान यह दो ज्ञान बिलकुल आत्मध्यान करने ही से मनुष्य जन्मधारी जीव ही को होते हैं—एक जीव के एक वक्त में कमती से कमती एक और ज्यादा से ज्यादा ४ ज्ञान होते हैं—यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान ही होगा। क्योंकि जिस समय केवलज्ञान होता है उस समय पूर्ण ज्ञान हासिल हो जाता है फिर और ४ प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है। दो होंगे तो मति और श्रुति होंगे तीन होंगे, तो मति श्रुति और अवधि या मन पर्य्यय। और चार होंगे तो मति, श्रुति, अवधि और मन पर्य्यय होंगे।

हमारे में मति और श्रुति यह दो ज्ञान ही मौजूद हैं और यह दोनों ज्ञान पांच इन्द्रिय और मन के आधीन हैं क्योंकि हमारे आत्मा का इतना ज्ञान मन्द है कि यह विना इनकी

जीवाइनवपयत्थे,
जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं
भावेण सद्दहंतो,
अयाणमाणेवि सम्मत्तं ।५१।
सव्वाइं जिणेसरभ्भा,-
सिआइं वयणाइं नन्नहा हुंति॥
इअ बुध्धी जस्स मणे,
सम्मत्तं निच्चलं तस्स ॥५२॥
अंतोमुहुत्तमित्तं,-
पि फासिअं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं

सहायता के नहा देख सकता जस कि कमती दृष्टि वाल को चश्मे की सहायता के बिना ठाक नहा मालम पडता और जस चश्मे मे यदि कुछ दोष हो जाय तो देख न सके या कम देख सके न और का और दिखे इसी तरह यदि पाच इन्द्रिय व मन बिगडे हों व किसी में दोष होय तो उनके द्वारा भी जो जानना होगा वह कमती बढती और का और व नहीं जानना होगा। यही कारण है कि वृद्ध अवस्था में इन्द्रियों की शिथिलता होने पर जानने में भी कमी हो जाती है और इन्द्रिय और मन के ठीक रहने से जानपना भी ठीक होता है जसे जितना तेज चश्मा होगा उतना तेज दिखलाई देगा जितना मन्द होगा उतना ही मन्द प्रगट होगा—अब प्रश्न केवल इतना ही है कि ऐसे जीवों का ज्ञान इतना क्यों मन्द हो रहा है उसके लिये ऊपर लिखे अनुसार फिर भी कहना होता है कि एक प्रकार का मल है जो अनादिकाल से हमारे आतमज्योति को प्रगट नहीं होने देता—

चौथा अध्याय

अजीवतत्व

'अजीव' उसे कहते हैं जो जीव नहीं अर्थात् जिस वस्तु में अपने आप चेतनता यानि देखने जानने की शक्ति नहीं। अजीव पाच प्रकार के जनमत में कहे हैं, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ॥

सिद्धा (य सिद्धणिक्काय)।५५।

जिणसिद्धा अरिहंता,

अजिणसिद्धा य पुंडरिअपमु-

हा ॥ गणहारि तित्थसिद्धा,

अतित्थसिद्धा य मरुदेवी॥५६।

गिहिलिंगसिद्ध भरहो,

वलकलचीरी य अन्नलिंगम्मि ।

साहू सलिंगसिद्धा,

थीसिद्धा चंदणापमुहा ॥५७॥

पुंसिद्धा गोयमाई,

यह लोक सब जगह छः द्रव्यों से भरा हुआ है। वह छः द्रव्य ऊपर कहे हुए पांच तरह के अजीव और एक जीव द्रव्य हैं ॥

इस पांच अजीवों मे धर्म, अधर्म, आकाश और काल तो बिलकुल अमूर्तिक है। सिर्फ पुद्गल ही मूर्तिक है ॥

इस जगत मे जितनी वस्तुएं इन्द्री गोचर हो रही हैं सब पुद्गल ही हैं ॥

हमारा बहुत बड़ा सम्बन्ध पुद्गल से रहता है इस कारण पहले पुद्गल नामा अजीव ही के भेदों का वर्णन प्रगट किया जाता है ॥

पुद्गल छः प्रकार के होते है (१) सूक्ष्म सूक्ष्म (२) सूक्ष्म (३) सूक्ष्म स्थूल (४) स्थूल सूक्ष्म (५) स्थूल (६) स्थूल स्थूल ॥ सूक्ष्मसूक्ष्म पुद्गल का एक परमाणु होता है याने इतना छोटा हिस्सा कि जिसका फिर भाग न हो सके ॥

सूक्ष्म—कर्म वर्गणा के पुद्गल है जिन से बंधा हुआ यह आत्मा संसार चक्र मे घूमा करता है और जिन के छूट जाने से यह जीव मुक्त कहलाता है ॥

सूक्ष्म-स्थूल वह चीज है जोकि देखने में सूक्ष्म है याने चर्म नेत्रों से नही दिखलाई पड़ती परन्तु अपने कार्य में बहुत स्थूल है याने काम उसका बहुत बडा मालूम होता है जैसे शब्द (आवाज) खुशबू जोकि देखने में नही आते परन्तु काम इनका साक्षात् प्रगट हैं–

स्थूल-सूक्ष्म वह पुद्गल है जो देखने में बहुत मालूम हो पर सूक्ष्म इतना कि आप उसे हाथ से पकड़ नहीं सकते जैसे चांदनी, धूप, छाया आदिक ॥

श्रीवीतरागाय नमः

॥ अथ ॥

श्रीबालावबोधसहितं नवतत्वप्रकरणं

॥ प्रारभ्यते ॥

श्रीवीरजिनं नत्वा, मत्वा तद्दिष्टनावचक्रं च ॥
नवतत्त्वार्थ विवरणं, कुर्वेऽहं बालबोधाय ॥ १ ॥

प्रथम ग्रंथकार श्रीधर्मसूरि महाराज वस्तुसंकीर्तनरूप मंगलद्वारा नव तत्त्वनां नाम कहे छे.

आर्यावृत्तं.

जीवाऽजीवा पुण्णं, पावाऽसव संवरो
य निज्जरणाणा ॥ बंधो मुक्खो य तहा,
नव तत्ता हुंति नायव्वा ॥ १ ॥

स्थूल यह पुद्गल है जो बहनेवाली चीज है याने जिसके टुकडे कर देने में फिर यह विना किसी चीज की सहायता के ऐसे ही मिलजावे जैसे पानी, दूध, तेल आदिक ॥

स्थूल स्थूल यह पुद्गल हैं जिनका टुकड़ा किये जाने से विना दूसरी चीज का मदद के फिर न जुड सकें जैसे पत्थर मिट्टी लकडी आदिक ॥

इन छ भेदों में हमारे जीव के साथ विशेष कर सम्बन्ध इस सूक्ष्म जाति के पुद्गलों से है जोकि हमारे जीव को स्वभाव जनित निजानन्द प्राप्त करने में बाधा डालते हैं इसी लिये हमें ऐसे कर्म वर्गणा जाति के पुद्गलोंका विशेष हाल कहना उचित है ॥

कर्म वर्गणा के पुद्गलों याने कर्मों का सम्बन्ध हमारे जीव से अनादि काल से है और यही एक प्रकार का मल है जोकि जीव को अपने स्वाभाविक कार्य्य के करने में बाधा डालता है और जब तक यह कर्मरूपी मैल हमारी आत्मा से मिला है तब तक यह आत्मा स्वाधीन रह कर अपने अपने ज्ञान दर्शन सुख वीर्य स्वभाव को प्रकाश नहीं आप कर सकता। यह कर्मरूपी मल हमेशा से इस जीव के साथ लगा है कोई नया नहीं परन्तु इसके निज स्वभाव से भिन्न है। जैसे खान से निकलाहुई धातु मिट्टी आदि से मिली हुई निकलना है और मिट्टी के अलग करने से वह शुद्ध साफ हो जाती है, मिट्टी का स्वभाव उस धातु के स्वभाव से भिन्न है। उसी तरह आत्मा से अनादि काल का मिला हुआ यह भिन्न

तेथी विपरीत जे चेतना रहित जड स्वभाव-
वालो होय, ते बीजुं अजीवतत्त्व कहेवाय; जेणे
करी शुभ कर्मनां पुद्गलोनो संचय थवाथी
सुखनो अनुभव थाय छे, ते त्रीजुं (पुण्णं के०)
पुण्यं, एटले पुण्यतत्त्व कहेवाय; ते पुण्यना बे
भेद छे. एक द्रव्यपुण्य, अने बीजुं भावपुण्य,
तेमां जीवने सुख भोगववामां कारणरूप जे
शुभ कर्म, ते द्रव्यपुण्य अने शुभकर्मनी उत्प-
त्तिमां कारणरूप जे शुभ आत्मपरिणाम, ते
भावपुण्य कहेवाय. अथवा पुण्यानुबंधी पुण्य
अने पापानुबंधी पुण्य, एम पण बे भेद थाय,
तेमां पुण्य भोगवतां नवुं पुण्य बंधाय, ते पुण्या-
नुबंधी पुण्य अने पुण्य भोगवतां नवुं पाप
बंधाय, ते पापानुबंधी पुण्य कहेवाय. तेथी
विपरीत जेणे करी अशुभ कर्मनां पुद्गलोनो
संचय थवाथी दुःखनो अनुभव थाय छे, ते

स्वभावधारी कर्मरूपी मल प्रयत्न करने से दूर होता है और यह आत्मा शुद्ध हो सकता है ॥

यह कर्म्म वर्गणा के परमाणु जोकि संसारी जीवों को प्रसे रहते हैं इतने सूक्ष्म हैं कि अनंतानंत इस जीव के साथ रहते हुए भी इन चर्मनेत्रों से दिखलाई नहीं पड़ते इसके लिये हमें आश्चर्य न करना चाहिये क्योंकि वायुकाय के पुद्गल इतने भारी होने पर भी कि बड़े बड़े पहाड़ के शिखरों को अपने धक्के से गिरा दें दिखलाई नहीं पड़ते इसी प्रकार बहुत सी ऐसी चीज़ें तलाश करने से मिलेंगी जोकि नहीं दिखलाई पड़तीं। यह कर्म वर्गणा कुछ एकही रूप से अनादि काल से नहीं आ रही है, हर एक समय (जोकि काल का सब से छोटा हिस्सा है) में पुराने कर्म के पुद्गल, झड़ते जाते हैं और नये मिलते जाते हैं।

पुराने कर्म आत्मा के साथ रहने से जिस समय वे रस देने को सन्मुख होते हैं अज्ञानी आत्मा को उस तरह के कर्म के फल के भोगने के लिये उद्यत होना होता है ज्ञानवान आत्मा कर्म का फल कमती बढ़ती भी भोग सकता है यदि वह भोगने वाला आत्मा समभाव से याने यह समझ कर कि यह मेरे ही किये हुए कर्म का फल है उस दशा को सह ले और अपने भाव बिलकुल कलुषित व हर्षित न करे तो उस कर्म फल भोगने की अवस्था में उसके नए कर्म्मों का बन्धन नहीं होगा किन्तु यदि कुछ भी हर्ष विषाद होगा तो नये कर्म्मों का अवश्य बंधन होगा जैसे किसी जीव के कर्म उदय के वश से कोई रोग उत्पन्न होने के कारण बन गए। उस समय यदि

कर्मोनुं रोकावुं, ते द्रव्य संवर, अने आवतां कर्मोने रोकवामां कारणरूप जे आत्मानो शुद्ध परिणाम, ते भाव संवर, एम बे भेदवाळुं संवर तत्त्व कहेवाय; (य के०) च, एटले अने जेणे करी आत्मप्रदेशमांथी देशथकी कर्म जूदां थाय छे, अथवा पूर्वे करेलां कर्मोनो जे क्षय थाय छे, एटले तप प्रमुखे करी कर्मनुं पचावयुं थाय छे, ते सातमुं (निज्जरणा के०) निर्जरणा, एटले निर्जरातत्त्व कहेवाय; तेमां कर्मोनो देशथी क्षय थाय, ते द्रव्यनिर्जरा अने ते क्षय थवामां कारणरूप जीवनो जे विशुद्ध परिणाम, ते भाव-निर्जरा, अथवा समकीती जीवनी सकाम नि-र्जरा अने मिथ्यात्वीनी अकाम निर्जरा, एम पण बे भेदे निर्जरा कहेवाय. जे नवां कर्मोनुं ग्रहण करीने तेनी साथे जीवनुं बंधन थवुं, क्षीरनीरनी पेठे मळी जवुं थाय, ते आठमुं

वह रोगी न घबडा कर,समभाव रक्खे ऐसा समझ कर कि यह रोग की उत्पत्ति मेरे ही बाधे हुए पूर्व कर्म का फल है, तो उसके उस जाति के नए कर्म्मों का बन्धन न होगा और यदि इसके प्रतिकूल घबडाएगा,दुखी होगा, तो अवश्य उसके उस समय की भावों में तीव्रता व मदता के अनुसार उसी जाति के कर्म परमाणुओं का बधन होगा जोकि आगामी फिर कभी फल देने के सम्मुख होंगे। यह कर्मों का चक्कर उस सूत बटार के चक्कर के समान है जोकि एक तरफ से खुलता जाय और दूसरी तरफ से बधता जाय। कर्म्म चक्कर का डालने वाला बाधने वाला एक जीव ही है। यदि यह प्रयत्न करे तो बधे कर्म बिना रस दिये ही झड जाय और नए कर्म बधे ही नहीं॥

यहा पर इतना कह देना भी अनुचित न होगा कि यह ससारी जीव बिलकुल कर्मों के वश नहीं है यदि यह प्रयत्न करे तो पहिले के कर्मों को अपने फल देने के पहिले ही दूर कर सकता है तथा उनके जोर घटा सकता है और उनका जोर बढा भी सकता है। इसका वर्णन "निर्जरा" तत्व में किया जायगा॥

हम यहा पर अपने उन भाइयों का ध्यान इस विषय पर आकर्षण करते हैं जोकि कर्मों के आधीन अपने को मान कर निरुद्यमी रहते हैं। जैन मत का कभी यह सिद्धात नहीं है कि हम कर्मों ही के आधीन हैं। जैन मत के सिद्धात को जैसा ऊपर वर्णन किया गया है जानने वाले सदा उद्यम के घोडे पर सवार रह कर कर्मों को अपने ही वश में समझ कर अपनी

समजी लेवो. ते चकारथी ए नव तत्त्वने विषे सर्व पदार्थोनो समावेश थाय छे, अर्थात् एथी वधारे तत्त्व कोइ नथी, एवी सूचना करी छे॥१॥

ए नव तत्त्वमांहेला जीव अने अजीव, ए बे तत्त्व मात्र जाणवा योग्य छे. पुण्य, संवर, निर्जरा अने मोक्ष, ए चार तत्त्व ग्रहण करवा योग्य छे. परंतु एमांनुं पुण्यतत्व जे छे, ते व्यवहार नये करी श्रावकोने ग्रहण करवुं योग्य छे, अने निश्चय नयवडे त्याग करवुं योग्य छे, तेमज मुनिने उत्सर्गे त्याग करवुं योग्य छे, अने अपवादे ग्रहण करवुं योग्य छे, तथा पाप, आश्रव अने बंध, ए त्रण तत्त्व तो सर्वथा सर्वने त्याग करवा योग्यज छे॥ उक्तं च॥ हेया बंधाऽसव पा,वा जीवाऽजीव हुंति विन्नेया॥ संवरं निज्जर मुक्खो पुणं हुंति उवाए॥१॥

ए नव तत्त्वनां नाम कह्यां, अन्यथा संक्षेपथी तो जीव अने अजीव, ए बे तत्त्वज श्री

आत्म उन्नति की ओर दत्तचित्त रहते हैं। जैनमत कहता है कि जहां आलस्य है वहां पाप है। श्री उमा स्वामी कृत तत्वार्थ सूत्र में हिंसा का भेद इस प्रकार लिखा है कि प्रमाद के योग से जो प्राणों का नाश करना है, वह हिंसा है। आलसी पुरुष न खाने में न पीने में न उठाने में न धरने में न बात करने में किसी ही काम में उचित यत्न न रखने के कारण जीव हिंसा के पाप के भागी होते हैं। जो भाई जिनेन्द्र दर्शन करने का उद्यम किंचित भी न करने पर और पूछने पर यह जवाब दे देते हैं कि भाई क्या करें हमारे भाग्य ही में नहीं जो थोड़ी सी भी फुरसत मंदिर जाने को मिले वे लोग और भी ज्यादा पाप के भागी होते हैं।

इस विषय का विशेष वर्णन जानना हो तो श्री पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ग्रन्थ की स्वाध्याय करके जान सकते हैं।

यहां पर यदि कोई प्रश्न करे कि कर्म वर्गणा के पुद्गल मूर्तिक हैं और आत्मा अमूर्तिक है किस प्रकार अमूर्तिक को मूर्तिक घेर सकता है इसका समाधान इस प्रकार है कि यह संसारी जीव अपनी वर्तमान दशा में अमूर्तिक नही किन्तु मूर्तिक है क्योंकि अनादि से कर्मों करके घिरा हुआ है उसी कर्म के साथ मे और कर्म आकर मिल जाते हैं, शुद्ध जीव कर्मों से सम्मिलित नही हो सकता, जिस समय जीव के भाव अपने स्वभाव से भिन्न होते हैं उस समय कर्म वर्गणा के परमाणुओ को जोकि तीनों लोक में भरे हैं यह संसारी जीव आकर्षित कर लेता है। इस लिये कर्म्म के फन्दों से छूटनाही इस जीव का परमहित है यह कर्म्म आठ ८ प्रकार के होते हैं॥

तथा अन्यत्र मतांतरे सात तत्त्व पण छे, केमके पुण्य अने पाप, ए बे तत्त्वनो अंतर्भाव, बंधतत्त्वमांहेज थाय छे, कारण के जे शुभ प्रकृतिकर्मबंध ते पुण्यतत्त्व अने अशुभ प्रकृतिकर्मबंध ते पापतत्त्व छे. माटे पुण्य पाप रहित सात तत्त्व कहीए. तेमज वली पांच तत्त्व पण कह्यां छे, इत्यादिक घणो विस्तार विशेषावश्यक तथा तत्त्वार्थ अने लोकप्रकाशादि ग्रंथोथकी जाणवो.

हवे प्रत्येक तत्त्वना जुदा जुदा भेद कहे छे.

चउदस चउदस बाया,-लीसा बासी
अ हुंति बायाला ॥ सत्तावन्नं बारस,
चउ नव भेआ कमेणेसिं ॥ २ ॥

गाथा २ जीना छूटा शब्दना अर्थ.

चउदस—चौद.
चउदस—चौद.
बायालीसा—बेंतालीश.
बासी—ब्याशी.
अ—अने.
हुंति—थाय छे.

(१) ज्ञानावरणी (२) दर्शनावरणी (३) अंतराय (४) मोहनी (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) वेदनी ॥

इन में से पहले के ४ कर्म घातिया कहलाते हैं क्योंकि यह जीव के स्वभाव को आवरण करने वाले हैं और अन्त के ४ अघातिया क्योंकि यह जीव के स्वभाव को न ढक कर केवल ऐसे कारण मिलते हैं जोकि जीव को स्वभाव भूलने के कारण हो जाते हैं ॥

अध्याय पांचवां

[आठ कर्म]

(१) ज्ञानावरणी कर्म

इस कर्म का यह स्वभाव है कि इस के सम्बन्ध से आत्मा का ज्ञान प्रगट नहीं होता तथा कम प्रगट होता है यह पांच प्रकार का होता है ॥

(१) मति ज्ञानावरणी—जो मति ज्ञान को न होने दे। मति ज्ञान वह ज्ञान है जो कि पांच इन्द्री और मन के द्वारा किसी पदार्थ का जाने जैसे हम पीली वस्तु को आंख इन्द्री से देख कर उसके और लक्षण जान कर यह निश्चय करते हैं कि यह सोना है पीतल नहीं। यह सब ज्ञान 'मतिज्ञान' है। मति ज्ञाना वरणी कर्म के कमती बढ़ती होने के कारण जीवों की साधारण बुद्धि (Common Sense) कमती बढ़ती होती है इसके ३३६ भेद हैं जिसका वर्णन श्री सर्वार्थ सिद्धि जी ग्रन्थ से जानना योग्य है ॥

ए नवे तत्त्वना (कमेण के०) क्रमेण, एटले क्रमे करी (जेआ के०) जेदाः एटले जेद (हुंति के०) जवंति एटले थाय छे.

उपर कहेलां नव तत्त्वना सर्व जेदनी संख्या वसेंने छोंतेर थाय छे. तेउमां अठ्याशी जेद अरूपी छे, अने एकसो ने अठ्याशी जेद रूपी छे॥ उक्तं च ॥ धम्माऽधम्माऽगासा, तिय तिय अद्धा अजीव दसगा य॥ सत्तावन्नं संवर, निज्जर डुदस मुत्ति नवगा य ॥ १ ॥ अठासि अरुवि हवइ, संपइ जणामि चेव रूवीणं ॥ परमाणु देस पएसा, खंध चउ अजीव रूवीणं ॥ २ ॥ जीवे दस चउ डु चउ, वासी वायाल हुंति चत्तारी ॥ सय अठासी रूवी, डुसय छस्सत्त नव तत्ते ॥ ३ ॥ गाथार्थः—धर्मा, अधर्मा, अन आकाशास्तिकाय, ए दरेकना त्रण त्रण तथा अद्धा एटले काळ ए अजीव, तेना १० जेद, तथा संवरना ५७ जेद,

(२) श्रुति ज्ञानावरणी—जो श्रुति ज्ञान को न होने दे। श्रुति ज्ञान मति ज्ञान पूर्वक होना है अर्थात् पदार्थों का विशेष हाल व भेद मालूम करना यह श्रुति ज्ञान का विषय है ११ अङ्ग १४ पूर्व का ज्ञान सब श्रुति ज्ञान है॥

(३) अवधि ज्ञानावरणी वह ज्ञान है जो अवधि ज्ञान को न होने दे। अवधि ज्ञान वह ज्ञान है जिसके द्वारा तपस्वी मुनि अपने व और जीवों के पूर्व जन्म के चरित्रों को व आगामी चरित्रों को विचार करने से मालुम करते हैं यह ज्ञान रूपी पदार्थों ही को जान सकता है। यह ज्ञान देव और नारकियों के भी होता है जिससे वे अपने पूर्व भवका वृत्तांत विचार करने से जान लेते है॥

(४) मन पर्यय ज्ञानावरणी—मन पर्यय ज्ञान को नहीं होने देती—मन पर्यय ज्ञान वह ज्ञान है जो कि दूसरों की मन सम्बन्धी सूक्ष्म बार्ताओं को व सूक्ष्म पुद्गल द्रव्यों के चरित्र को जान लेता है॥

(५) केवल ज्ञानावरणी—केवल ज्ञान को नहीं होने देता केवल ज्ञान वह ज्ञान है जो कि सर्व पदार्थों की कुल पर्य्यायों को एक ही समय में मालुम करता है॥

इस प्रकार ज्ञानावरणी कर्म्म के पांच भेद है। इस कर्म के आश्रव होकर बंधने (अर्थात् कर्मों का आकर आत्मा से सम्बन्ध करने) में नीचे लिखे कारण होते हैं। जब मन वचन और काय चलायमान होते हैं उसी समय कर्मों का आगमन होता है जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को घसीट लेता है इसी

छे, तथापि जीव भेदे करी कर्म सहित संसारी पणामाटे अहीं रूपीमां गण्यो छे, तथा अजीवतत्त्वमांहेला पुद्गल द्रव्यना चार भेद रूपी अने धर्मास्तिकायादिक चार द्रव्यना दश भेद अरूपी छे.

ए नवे तत्त्वना २७६ भेदमां जीव अजीव, रूपी अरूपी भेदोनी संख्यानो तथा हेय ज्ञेयादिनो यंत्र नीचे प्रमाणे छे.

नाम	जीव.	अजीव.	रूपी.	अरूपी.	हेय.	ज्ञेय	उपादेय.
जीवतत्त्व	१४	....	१४	...	..	१४	...
अजीवतत्त्व	...	१४	४	१०	...	१४	....
पुण्यतत्त्व	...	४२	४२	.	....	...	४२
पापतत्त्व	....	८२	८२	...	८२	...	...
आश्रवतत्त्व	...	४२	४२	...	४२	....	...
संवरतत्त्व	५७	....	...	५७	..	....	५७
निर्जरातत्त्व	१२	...	....	१२	...	.	१२
बंधतत्त्व	...	४	४	...	४	....	....
मोक्षतत्त्व	९	...	..	९	....	...	९
	९२	१८४	१८८	८८	१२८	२८	१२०

प्रकार सरागी मन वचन काय कर्मों को प्रसीट लेते है ॥
ज्ञानावरणी कर्म के आने (आश्रव) के कारण—

१—प्रदोष-तत्व ज्ञान की कथनी करने वाले से व उत्तम ज्ञान के देने वाले से ईर्षा भाव रखना प्रशंसा न करके चुप रहना ॥

२—निन्हव-आप पदार्थों का हाल जानता हुआ भी अगर कोई पूछे तो यह कहना कि हम नहीं जानते भावार्थ अपने ज्ञान को दूसरे से छिपाना ॥

३—मात्सर्य—अपने को शास्त्र ज्ञान व पदार्थों का ज्ञान होते सते और आप सिखावने योग्य होते सते भी दूसरे को न सिखलाना यह भाव रख कर कि यदि दूसरा सीख जावेगा तो मेरी बराबरी करेगा ॥

४—अन्तराय-ज्ञान के अभ्यास में विद्या की उन्नति में विघ्न करना, विद्योन्नति के कारणों को न होने देना ॥

५—असादना-दूसरे के प्रकाश किये हुए ज्ञान को वर्जना याने मना करना ॥

६—उपघात-ठीक ठीक ज्ञान में भी दोष लगाना। यह छः तो मुख्य कारण ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव के हैं। इनके सिवाय विद्या पढ़ने में आलस्य, शास्त्र व पुस्तक पढ़ने में अनादर, आप बहुज्ञानी होकर गर्व करना, झूठा उपदेश देना, ज्ञानवानों का अपमान करना, खोटे शास्त्र का लिखना छपाना व बेचना इत्यादि जो जो बातें किसी प्रकार से भी

चतुर्विध, (पंच छव्विहा के०) पंचषड्विधाः, एटले पंचविध, तथा षड्विध, एटले छ प्रकारना (जीवा के०) जीवाः, एटले जीवो छे. तेमां सर्व जीवने श्रुतज्ञाननो अनंतमो जाग उघाडो रहेवाथी तेउं (चेयण तसइयरेहिं के०) चेतनत्रसेतरैः, ते चेतन एटले चेतना लक्षणवान् छे, माटे एकविध जाणवुं. त्रस एटले जे चलन शक्तिमान् होय, तडकाथी छायाए आवे, अने छायाथी तडकामां आवे, तथा जय देखी त्रास पामे, तेने त्रस कहीए; अने इतर ते बीजा स्थावर एटले जे स्थिरतावान् होय, एम सर्व जीव द्विविध जाणवा. (वेय गइकरणकाएहिं के०) वेदगतिकरणकायैः, एटले वेद त्रण, स्त्रीवेद, पुरुषवेद अने नपुंसक वेद, एम सर्व जीव त्रिविध जाणवा. गति चार, देवता, मनुष्य, नारकी अने तिर्यंच, एम सर्व जीव चतुर्विध जाणवा. करण ते इंद्रिय पांच,

अपने व दूसरे के ज्ञानाभ्यास में रोकने वाली हैं वे सब ज्ञाना-वरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं ॥

हे हमारे प्यारे जैनी भाइयो ! देखो आपका प्राचीन शास्त्र क्या कहता है—क्या आप लोगों को ज्ञानाभ्यास के कारणों को न जारी करने के कारण तथा विद्योन्नति में, आलस्य करने के कारण ज्ञानावरणी कर्म का आश्रव न होगा ? क्या वह विद्वान पंडित जोकि आप ज्ञान से परिपूर्ण होकर और अपने ज्ञानरूपी ज्योति से हजारों के अज्ञान रूपी अंधेरे को मेटने की योग्यता रखने पर भी आलस्य करते हैं तथा दूसरों को वस्तु का स्वरूप भले प्रकार यह समझ कर नहीं सिखलाते हैं कि यह जान कर हमारी बराबरी करेंगे व हम से ज्ञान में उच्च हो कर हमारे मान में विघ्न करेंगे ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव के भागी नहीं हैं ? क्या वह हमारे सुख सेवी (पिन्शनयाफ़्ता) भाई जिनको सरकार पेन्शन इसी गरज से देती है कि वे अपने अन्त के दिन सुख शान्तता पूर्वक बिताते हुये अपने अनुभव से हासिल किये हुये ज्ञान को दूसरों को प्रदान करें यदि ऐसा न करके अपने ज्ञानको छिपा कर रक्खें तो ज्ञाना-वरणी कर्म के आश्रव के भागी नही है ?

हे हमारे जैनी भाइयो ! आप अपने प्राचीन शास्त्रों को पढ़ कर उस पर चलने की कोशिश कीजिये। आपके शास्त्र जब पुकार पुकार कर कहते हैं कि "ज्ञान बिना करनी दुखदाई, अज्ञानी कोटि वर्ष तप तपे तो जितने कर्मों का क्षय हो उतने कर्मों को ज्ञानी एक क्षण भर तप करके नाश कर सकते हैं" तो क्यों आप ज्ञान शून्य अवस्था अपनी करते जाते हैं। आपने अपने

गाथा ४ थीना छूटा शब्दना अर्थ.

एगिंदिय–एकेंद्रिय.	ति–तेंद्रिय.
सुहुम–सूक्ष्म.	चउ–चउरिंद्रिय.
इयरा–इतर (बादर).	अपजत्ता–अपर्याप्ता.
सन्नि–संज्ञी.	पज्जत्ता–पर्याप्ता.
इयर–इतर (असंज्ञी).	कमेण–अनुक्रमे.
पणिंदिआ–पंचेंद्रिय.	चउदस–चौद
स–सहित, साथे.	जियठ्ठाणा–जीवनां स्थान.
बि–बेंद्रिय.	

विस्तारार्थः–(एगिंदिय के०) एकेंद्रियाः, एटले एकेंद्रियना बे भेद छे, (सुहुमियरा के०) सूक्ष्मतराः एटले एक सूक्ष्मबीजा इतर एटले बादर, पांचे स्थावरने एकेंद्रिय कहे छे. तेमां जे चौद राजलोकमां व्यापी रह्या छे, पर्वत प्रमुखने भेदीने जाय आवे, कोइ वस्तुथी भेदाय नहीं, ने छेदाय पण नहीं, अग्नि जेने बाली शके नहीं, चर्मदृष्टिए देखाय नहीं, मनुष्यादिक कोइ प्राणीना उपयोग

को अज्ञानी बनाकर अपना धर्म कर्म राज्य पाट सब गँवा दिया। आपका रहा सहा व्यापार भी चला जा रहा है। आप सरासर देखत हैं पर कुछ उपाय नहीं करते। यह जमाना आलस्य का नहीं, चेष्टा का है। यदि उद्योगी पुरुष हों तो बहुत कुछ कर सकता है। आपकी सत्ता भी आप से निकल कर आप से ज्यादा जानकारों (अंग्रेज व्यापारी) के हाथ में चली जा रही है। आपकी रुई की सत्ता कुछ दिनों में युरुपियन उद्योगी व्यापारियों के हाथ में चली जायगी। आप यह देखते हुए भी कि आपके भाई जापान निवासी पुरुषों ने कितनी उन्नति अपनी की है, आप बिलकुल बे-खबर हैं। जापान के लोग बौद्धमती हैं। वे भी जैन धर्म के माफिक ज्ञान को सर्वोत्तम समझते हैं। उन्होंने शास्त्रानुसार आज्ञा का मान ज्ञान को इतना बढ़ाया कि ५० वर्ष के भीतर भीतर कुल सौदागरी की चीजें (दियासलाई, बटन, सुई, कंघी, कपडा इत्यादि रोज की काम की चीज) जो पहले विलायत से मंगाते थे अपने घर में प्रस्तुत करने लगे। भाइयों! जापान की तरक्की का केवल कारण विद्या का प्रचार है। मि० धर्मपाल ता० २८ अप्रैल १६०४ के "ऐडवोकेट" में लिखते हैं कि जापान की तरक्की का असली कारण विद्या का प्रचार है। जापान में कोई भी अनपढ़ बच्चा नहीं है। 'There are no illiterate children in the land of the Rising Sun" वहां के अनाथ बालकों की वहां की म्युनिसिपेलिटी और सरकार दोनों बड़ी खबरगीरी रखते हैं। छोटे छोटे बालकों को कारीगरी सिखलाई जाती है। मि० धर्मपाल कहते हैं कि सन् १८८६ में जापान

गाथा ४थीना छूटा शब्दना अर्थ.

एगिंदिय-एकेंद्रिय.	ति-तेंद्रिय.
सुहुम-सूक्ष्म.	चउ-चउरिंद्रिय.
इयरा-इतर (बादर).	अपजत्ता-अपर्याप्ता.
सन्नि-संज्ञी.	पज्जत्ता-पर्याप्ता.
इयर-इतर (असंज्ञी).	कमेण-अनुक्रमे.
पणिंदिआ-पंचेंद्रिय.	चउदस-चौद
स-सहित, साथे.	जियट्ठाणा-जीवनां स्थान.
बि-बेंद्रिय.	

विस्तारार्थः-(एगिंदिय के०) एकेंद्रियाः, एटले एकेंद्रियना बे भेद छे, (सुहुमियरा के०) सूक्ष्मतराः एटले एक सूक्ष्मबीजा इतर एटले बादर, पांचे स्थावरने एकेंद्रिय कहे छे. तेमां जे चौद राजलोकमां व्यापी रह्या छे, पर्वत प्रमुखने भेदीने जाय आवे, कोइ वस्तुथी भेदाय नहीं, ने छेदाय पण नहीं, अग्नि जेने बाली शके नहीं, चर्मदृष्टिए देखाय नहीं, मनुष्यादिक कोइ प्राणीना उपयोग

के लोग मुश्किल से १ ग्लास लैम्प की चिमनी बना सकते थे। जब कि ३ वर्ष बाद सन १९०२ में देखा गया तो वे ८००० टन वाले जहाज़ अपने डैक यार्डों में तय्यार कर रहे हैं। पस भाइयो! प्रमाद को छोड़ कर अपना सर्वस्व ज्ञान की उन्नति में खर्च कीजिए, तभी आप ज्ञानावरणी कर्म के संयोग से दूर रहेंगे। अन्यथा यह कर्म बँध कर आपकी आत्मा को निगोद आदि एकेन्द्री पर्याय में ले जाकर अज्ञानी की भांति ही असमर्थ कर देंगे॥

अध्याय छठा।

२—दर्शनावरणी कर्म

यह वह कर्म है कि जिसके सम्बन्ध से आत्मा की दर्शन शक्ति प्रकट नहीं होती तथा कम प्रकट होती है। यह नव प्रकार का होता है—

(१) चक्षु दर्शनावरणी—वह कर्म है जिसके उदय से यह प्राणी अंधा होता व कम दृष्टिवाला होता है।

(२) अचक्षु दर्शनावरणी—वह है जिसके द्वारा आंख को छोड़कर और चार इंद्री जैसे नाक कान मुंह स्पर्श इनके द्वारा मालूम करना न हो।

(३) अवधि दर्शनावरणी—अवधि दर्शन को न होने दे। अवधि दर्शन वह दृष्टि है कि जिसके द्वारा यह जीव अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थों को देखे। जैसे कुछ भव पहिले की बातें अपनी तथा औरों की देखकर कहना।

एटले वेंइिय, तेंइिय, चौरिंइिय, ए प्रत्येकनो एक एक जेद कह्यो ठे. तेणे करी सहित करीए, ते वारे सात जेद थाय.

एवी रीते एकेंइियना बे जेद, बेंइियनो एक जेद, तेंइियनो एक जेद, चौरिंइियनो एक जेद तथा पंचेंइियना बे जेद, मलीने सात जेद थया. ए साते जेदना जीवो बे प्रकारे होय ठे–एक (अपजत्ता के०) अपर्याप्ताः, एटले अपर्याप्ता तथा बीजा (पजत्ता के०) पर्याप्ताः एटले पर्याप्ता. तेमां जेने जेटली पर्याप्ति कही ठे, ते पूरी कीधी न होय, अने मरण पामे, तेने अपर्याप्ता कहे ठे. तथा जेने जेटली पर्याप्ति कही ठे, ते पूरी कीधी होय, अने पठी मरण पामे, तेने पर्याप्ता कहे ठे.

पूर्वे कहेला सात जेदना अपर्याप्ता अने सात जेदना पर्याप्ता, ए बे प्रकार होवाथी (कमेण के०) क्रमेण, एटले उक्त अनुक्रमे करी (चउदस के०)

(४) केवल दर्शनावरणी—आत्मा को तीन लोक देखने की शक्ति अर्थात् केवल दर्शन को न होने दे।

(५) निद्रा—जिसके द्वारा नींद आवे।

(६) निद्रा निद्रा—वह है जिसके द्वारा निद्रा बार बार आवे।

(७) प्रचलता—वह है जिसके द्वारा बेठे बैठे ओंघाई आवें।

(८) प्रचला प्रचला—माहो आंघाई बार बार आवे।

(९) स्त्यानगृद्धि—वह हे जिसके द्वारा सोता सोता उठ कुछ काम करे, फिर सो रहे और न जाने जो मैंने कुछ किया था। इस दर्शनावरणी कर्म का आश्रव होकर आत्मा के साथ बँधने में वही छ कारण है जो कि ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं—

१। प्रदोष—अच्छी दृष्टि व इन्द्री विषय अवधि व केवल दर्शनादि—इनको दूसरों में उत्तम देखकर ईर्षा करना।

२। निन्हव—आप जिस पदार्थ को देखा होय उसको दूसरों से छिपाना।

३। मात्सर्य्य—दूसरा शास्त्रादिक व और वस्तु देखना चाहे उसको न दिखाना न बतलाना—ऐसा भाव रखना कि देख कर मेरी हानि करेगा।

४। अन्तराय—दूसरे के पदार्थ देखने में विघ्न करना।

५। आसादना—दूसरे को देखा हुई चीज का मना करना।

६। उपघात—ठीक ठीक देखा हुई चीज में व देखने की शक्ति में दोष लगाना। इसके सिवाय दूसरे के नेत्र उपाड़ना, पर की इन्द्रियों को बिगाड़ना चाहना। अपना दृष्टि का गर्व करना, दिन में सोवना तथा आलस्य रूप रहना, सम्यक-दृष्टि

पंचेंद्रियनो तेरमो ज्ञेद, (विगलतिगं के०) विकत्रिक एटले बेंद्रिय, तेंद्रिय तथा चौरिंद्रियना त्रण ज्ञेद मलीने सोल ज्ञेद थाय छे, (इय सोलस के०) ए सोल ज्ञेदोना जीव बे प्रकारना छे, एक (पज्जत्ता के०) पर्याप्ता, बीजा (अपजत्ता के०) अपर्याप्ता मलीने (जीव के०) जीवना (बत्तीसं के०) बत्रीश ज्ञेद थाय छे.

शास्त्रांतरमां सर्व संसारी जीवोना पांचसें ने त्रेसठ ज्ञेद पण कह्या छे. तेमां मनुष्योना त्रणसें ने त्रण ज्ञेद थाय छे, ते आवी रीते–पांच महाविदेह क्षेत्र, पांच ज्ञरत क्षेत्र, तथा पांच ऐरवत क्षेत्र, मलीने पंदर कर्मज्ञूमि क्षेत्र छे. तेमज त्रीश अकर्मज्ञूमि युगलियानां क्षेत्र छे, अने छप्पन अंतर्द्वीप छे. ए सर्व मलीने पर्याप्ताना एकसो ने एक ज्ञेद, अपर्याप्ताना एकसो ने एक ज्ञेद, तथा संमूर्छिम अपर्याप्ताना एकसो ने एक ज्ञेद, मलीने त्रणसो ने त्रण ज्ञेद थाय.

को दूषण लगावना, कुतीर्थ की प्रशंसा करनी।' प्राणीन का घात करना तथा यतीश्वरों को देख ग्लानि करनी इत्यादि दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं। इन कारणों को बचाने के लिये हमे अपने मन वचन काय पर काबू रखना चाहिये क्योंकि जिस समय इनमे से कोई चलता है कार्मांण पुद्गल उसी समय उसके भाव (Thought) के प्रेरे उसके पास आते हैं और पुराने कर्मरूपी रज पर आकर जम जाते हैं।

प्यारे भाइयो! ऐसा जानकर कि आलस्य और प्रमाद हमारे दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं, हमें इसे दूर कर अपने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों की परिपूर्णता में कटिबद्ध होना चाहिये। यदि हमारे वर्तमान जैन जाति के शास्त्र के मर्मी इस दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारणो को छोड़ कर निरालसी हो पदार्थों का भेद मालूम करें और पुरुषार्थ की ओर ध्यान करें तो थोड़े ही दिनों में हमारी इस जैन जाति का सुधार हो जाय। खेद इस बात का है कि हमारे भाई अपने महान् आचार्यों के सदुपदेशो पर गौर ही नहीं करते॥

अध्याय सातवां।

३—वेदनी कर्म

यह वह कर्म है जिसके उदय होने से प्राणियों को ऐसी चीज़ों का मिलाप होता है जिनके सबब से संसार मे मोह करनेवाला प्राणी सुख व दुख मालूम करता है, परन्तु

पर्याप्ता तथा अपर्याप्ता ए बे प्रकार करतां वीश भेद थाय. तथा पूर्वना अठ्यावीश अने ए वीश मलीने अरुतालीश भेद थया.

एवी रीते मनुष्योना त्रणसो ने त्रण भेद, देवताना एकसो ने अठाणुं भेद, नारकीना चौद भेद, अने तिर्यंचना अरुतालीश भेद ए सर्व मली पांचसो ने त्रेसठ भेद थया ॥ इति ॥ ४ ॥

हवे जीवनुं लक्षण कहे छे.

अनुष्टुपवृत्तं ॥ नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ॥ वीरियं उवउ-गो अ, एअं जीवस्स लक्खणं ॥ ५ ॥

गाथा ५ मीना छूटा शब्दना अर्थ.

नाणं–ज्ञान.
च–अने.
दंसणं–दर्शन.
चेव–निश्चे.
चरित्तं–चारित्र.
च–अने.
तवो–तप.
तहा–तेमज.
वीरियं–वीर्य.
उवओगो–उपयोग.
अ–अने,
एअं–ए, आ.
जीवस्स–जीवनुं.
लक्खण–लक्षण.

जिसके मोह गल जाता है उसको वेदना कर्म का उदय सुख व दुख अनुभव व विचार नहीं करा सकता है। यह वेदनी कर्म दो तरह का होता है—

१—साता वेदनी।

२—असाता वेदनी॥

साता वेदनी कर्म का जब उदय होता है तब देव गति में सुन्दर शरीर, सुन्दर देवांगना, अनेक ऋद्धियां, अनेक देव चाकर आदि चीजों का मिलाप होने से सुख होता है और मनुष्य गति में राज्यादि विभव (दौलत), निरोग शरीर, अनेक चाकर सुन्दर स्त्री, अनेक मन मोहने महल आदि चीजों का सयोग होकर सुख होता है, तिर्यंच (पशु) गति में यदि घोड़े, गौ कुत्ते आदि की योनि में गए तो राजा महाराजा व धन वानों के यहां रहना हुआ कि जहां कई नौकर उनकी हर वक्त सेवा किया करें व मालिक भी खुश होकर प्यार किया करें। इसी तरह समझ लेना चाहिये कि जो चीजें ऐसी हों कि जिनके मिलने से मोही जीव सुख मालूम करते हैं, वे सब चीजें साता वेदनी कर्म के उदय से सुख देती मालूम होती हैं।

असाता वेदनी कर्म के उदय से यह प्राणी नरकों में जा कर अनेक प्रकार के दुख का चीजों का मिलाप पाता है। अर्थात् बदबूदार, दरख्त के पत्ते कटील, महाराग कुरूप शरीर इत्यादि खोटी खोटी चीजों की प्राप्ति कर दुख सहने से तकलीफ होती है। पशुगति में भूख प्यास के दुख, बलवान से डरने के दुख, गरमी सरदी के दुख, मनुष्य व अपने साथी जानवरों से मारे जाने के दुख, छोटे छोटे जानवरों के दुख

प्रकारनां हिंसादिक अशुभ परिणामथी निवृत्ति तथा व्यवहारथी क्रियानिरोधरुप चारित्रमांनुं गमे ते एक अथवा अधिक चारित्र (एटले ज्ञानादि गुणमां रमणता करवी ते,) जेमां होय, (च के०) तथा (तवो के०) तपः, एटले तप बे प्रकारनुं कह्युं छे, तेमां एक द्रव्यथी, एना बार भेद छे. तेना नाम निर्जरातत्त्वमां कहेवाशे. बीजुं इच्छानिरोधरुप भावथी एमांनु गमे ते एक अथवा अधिक तप जेमां होय, (तहा के०) तथा, एटले तेमज (वीरियं के०) वीर्य, ते करण तथा लब्धिरुप अथवा बल पराक्रमरुप ए बे प्रकारनां वीर्यमांनुं गमे ते एक अथवा वधारे वीर्य (एटले आत्मानी शक्ति) जेमां होय, तथा (उवओगो के०) उपयोगः, ते पांच ज्ञान, त्रण अज्ञान तथा चार दर्शन, ए बार प्रकारना साकार तथा निराकाररुप उपयोगमांनो गमे ते

की कोई हद ही नहीं: पानी बरसा, कुम्हला कर मर गए: ज्यादा धूप पड़ी, धूप की तेजी में मर गए; ओले पत्थर गिरे, भुंड के भुंड स्वाहा हो गये; आदमियों व जानवरों के पैरों के तले कुचल गए, थोड़ी देर तक तड़फड़ा तड़फड़ा कर मरे। ऐसे अनेक दुखदायक चीज़ों का मिलाप होता है। हमारे नेचर के तमाशा देखने वालों ने (Naturalist) इस बात को अच्छी तरह गौर किया होगा॥

इसी तरह मनुष्य गति में दरिद्री, रोगी, धनहीन होना, खोटी स्त्री, खोटे भाई, खोटे पुत्र का संयोग होना इष्ट वियोग (जिससे हम प्रीति करते हैं उस चेतन व अचेतन चीज़ का यकायक बिछुड़ जाना), अनिष्ट संयोग (जिस चेतन व अचेतन चीज़ का मिलाप हम नहीं चाहते हैं उसी ही चीज़ का संयोग होना) के दुख भुगतना इत्यादि दुखदायक चीजों का मिलाप होने से दुख होता है। देवगति में नीच जाति के देव होकर बड़े देवों की चाकरी करना, उनके लिये सवारी का काम देना, देवांगना (जिनकी उमर थोड़ी होती है) वियोग के दुख भुगतना इत्यादि दुख की प्राप्ति होती है।

वेदनी कर्म का आत्मा के प्रदेशों के पास आगमन कैसे भावों से व किस ओर अपना मन वचन काय रखने से होता है?

इस प्रश्न का उत्तर इस भांति जानना—

असाता वेदनी कर्म के आश्रव की कारणभूत इतनी बातें है—(१) दुख, (२) शोक, (३) ताप, (४) आक्रंदन, (५) वध, (६) परिवेदन॥

गाथा ६ ठीना छुटा शब्दना अर्थ.

आहार—आहार.
सरीर—शरीर.
इंदिय—इंद्रिय.
पज्जत्ती पर्याप्ति.
आणपाण—श्वासोश्वास.
भास—भाषा.
मणे—मन.
चउ—चार.
पंच पांच.
छप्पि—छ पण.
य—अने.
इग—एकेंद्रियने.
विगल—विकलेंद्रियने.
असन्नि—असंज्ञीने.
सन्नीणं—संज्ञीने.

विस्तारार्थः—पुद्गलना उपचयथी थयेली जे पुद्गलपरिणमनहेतु शक्ति विशेष, तेने पर्याप्ति कहे छे. एना बे भेद छे—एक लब्धिपर्याप्ति अने बीजी करणपर्याप्ति. जे कर्मना उदयथी आरंभेली स्वयोग्य पर्याप्ति सर्व पूरी करी नथी, पण करशे, तेने लब्धिपर्याप्ति कहे छे, अने जेणे स्वयोग्य पर्याप्ति सर्व पूरी करी लीधी, तेने करणपर्याप्ति कहे छे.

(१) दुःख—दूसरे को दुःख देने के परिणाम या अपने ही को किसी रंज के सबब दुःख देने के भाव तथा आप भी दुःखी होकर दूसरे को दुःखी करना सो दुःख है।

(२) शोक—जिस चेतन व अचेतन चीज में अपने को साता मालूम होती थी उसका बिछुड़ जाना, इस सबब से अपने परिणामों को मैला करना यानि रंज करना दूसरे को शोकित करना व आप और पर दोनों शोकित हो जाना सो शोक है।

(३) ताप—किसी सबब से अपनी बदनामी होती होय इस कारण परिणाम मैल करके मन में पछताना है (यदि कोई अशुभ कार्य अपने से हो गया होय उसके फिर न करने के भाव करके जो पछताना उसका नाम ताप नहीं है)। दूसरे को ताप करना व आप और दूसरे दोनों संताप में मग्न होना सो ताप है।

(४) आक्रंदन—तबियत में रंज की तेजी के सबब रोना, रुलाना व दोनों रोने लगना सो आक्रन्दन है।

(५) वध—अपने व किसी और के आयुबल इंद्रिय श्वासोच्छ्वास आदि प्राणों का वियोग करना याने मार डालना या आप और पर दोनों मर जाना सो वध है।

(६) परिदेवन—ऐसा रोना कि जिसको सुनकर लोगों के दिलों में दया (रहम) आ जावे। तथा दूसरे को ऐसा रुलाना व आप और पर दोनों इसी तरह रोने लगना सो परिदेवन है।

वडे आहार लइने तेने रसपणे परिणमाववानी जे शक्तिविशेष, ते आहार एटले आहारपर्याप्ति कहेवाय छे. पछी ते रसरूप परिणामने रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य, ए सात धातुपणे परिणमावीने शरीर बांधवानी जे शक्ति विशेष, ते शरीर एटले शरीरपर्याप्ति कहेवाय छे. पछी ते सात धातुपणे परिणमाव्यो जे रस, ते जेने जेटलां द्रव्य इंद्रिय जोइए, तेने तेटलां इंद्रियपणे परिणमाववानी जे शक्तिविशेष, ते इंद्रिय एटले इंद्रिपर्याप्ति कहेवाय छे. पर्याप्ति ए शब्द सर्वनी साथे जोडवो, केमके कहेली त्रण पर्याप्ति पूरी कर्या विना कोइ जीव मरण पामे नहीं, माटे पर्याप्ति शब्द वचमां कह्यो छे. ए त्रण पर्याप्ति बांधीने पछी (आणपाणजासमणे के०) आनप्राणजासामनांसि, एटले श्वासोश्वास योग्य वर्गणानां दलिक लइ श्वासोश्वसपणे

य छः बातें आप करे व दूसरे को करे व किसी की ऐसी दशा देखकर खुश होय व इन्हीं को मन बचन और काय से करे यह सब भाव व क्रियाएं असाता वेदनी कर्म के आश्रव के कारण होती हैं। इसके सिवाय दूसरे की बद-नामी करना, चुगली खाना, कठोर परिणाम होना, दूसरे के कषाय भाव से अंग उपंग छेद डालना, डर दिखलाना, कषाय भाव से अपनी तारीफ़ करना, दूसरे की बुराई करना, दूसरों के परिणाम दुखा देना आरंभ व परिग्रह में बड़ा ममत्व रखना, विश्वासघात (फ़रेब) करना. स्वभाव टेढ़ा रखना जीवों को बेमतलब दंड देना, विष पीना, या दूसरे को ज़हर पिलाना इत्यादिक जो जो पाप से मिले भाव हैं वह असाता वेदनी के आश्रव के कारण है। जैसे जैसे भाव में विकार होते हैं वैसे ही कार्माण जाति के पुद्गल आकर आत्मा के पुराने कर्मों के साथ में मिल जाते हैं और कालान्तर में फल देते हैं। इसी प्रकार साता वेदनीय के आश्रव के कारण यह हैं—

(१) भूत और बृती पर अनुकम्पा—याने भूत कहिये सामान्य प्राणी [Common human beings] और बृती कहिये बृत के धारी श्रावकादि पर पीड़ा देख कर ऐसे परिणाम होना मानों यह दुख हमही को हो रहे हैं और अपनी शक्ति भर देख दूर करने का यत्न करना।

[२] दान—दूसरे जीवों के भले के लिये अपना धन आदिक देना सो दान है। सो यह दान ४ प्रकार का है, औषध दान—दवाई का दान, आहार दान—भोजन का दान, अभय दान—जिसका कोई रक्षक न होय उसको रक्षा का दान, विद्या दान—याने इल्म हुनर का दान।

वडे आहार लइने तेने रसपणे परिणमाववानी जे शक्तिविशेष, ते आहार एटले आहारपर्याप्ति कहेवाय छे. पछी ते रसरूप परिणामने रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य, ए सात धातुपणे परिणमावीने शरीर बांधवानी जे शक्ति विशेष, ते शरीर एटले शरीरपर्याप्ति कहेवाय छे. पछी ते सात धातुपणे परिणमाव्यो जे रस, ते जेने जेटलां द्रव्य इंद्रिय जोइए, तेने तेटलां इंद्रियपणे परिणमाववानी जे शक्तिविशेष, ते इंद्रिय एटले इंद्रिपर्याप्ति कहेवाय छे. पर्याप्ति ए शब्द सर्वनी साथे जोडवो, केमके कहेली त्रण पर्याप्ति पूरी कर्या विना कोइ जीव मरण पामे नहीं, माटे पर्याप्ति शब्द वचमां कह्यो छे. ए त्रण पर्याप्ति बांधीने पछी (आणपाणउसासमणे के०) आनप्राणउसासमनांसि, एटले श्वासोश्वास योग्य वर्गणानां दलिक लइ श्वासोश्वसपणे

(३) सरागसंयम—धर्म की प्रीति के मवब सयम रखना याने अपने इन्द्रिय और मन को रोकना और इसी लिये कुछ बिलकुल छोडनेवाली चीजों को छोडना व कुछ का प्रमाण याने गिनता करके रखना—या श्रावक के १२ व्रत पालना व अज्ञान तप करना व अकाम निर्जरा के भाव होना। अकाम निर्जरा इसे कहते हैं कि कर्मों का उदय होकर झडना, उस समय किसी बात की कामना याने इच्छा का न होना।

(४) योग—मन वचन काय योगों का शुभ रहना याने मन में अच्छे भाव वचन हित मित व काय का अच्छे कामों में लगाना।

(५) क्षांति—क्षमाभाव का होना, याने क्रोध अर्थात् गुस्से का न होना।

(६) शौच—लोभ के भावों का चित्त में न होना।

यह मुख्य करके छ बातें साता वेदनी कर्म के आश्रव के कारण हैं। इनके सिवाय अरहन्त की पूजा में भाव व प्रेम, वृद्ध (बुड्ढे) तपस्वी, व अनाथ विधवाओं की रक्षा में उद्यमी [मुस्तेद] रहना, सरल परिणाम याने साफ परिणाम धरना, विनय रूप रहना, मान याने घमंड का न करना इत्यादि ना अच्छे भाव व अच्छे वचन व अच्छा (शुभ) काय चेष्टा—यह सब साता वेदनीय कर्म के आश्रव के कारण हैं।

प्यारे ज्ञाता आत्मा! यह वेदनी कर्म जब तक दूर न हो तब तक कभी दुःख कभी सुख की सामग्री प्राप्त होती रहती

आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति इंद्रियपर्याप्ति तथा श्वसोच्छ्वासपर्याप्ति, ए चार पर्याप्ति एकेंद्रियने होय. कहेली चार पर्याप्तिउनी साथे पांचमी जाषापर्याप्ति जोमीने पांच पर्याप्ति विकलेंद्रिय, एटले बेंद्रिय, तेंड्रिय तथा चौरिंद्रियने प्रत्येके होय. एज पांच पर्याप्तिओ असंज्ञी पंचेंड्रियने होय, अने उए पर्याप्तिओ संज्ञी पंचेंद्रियने होय ॥ इति ॥ ६ ॥

अहींआं जे पंचेंद्रियनी अपेक्षाए न्यून इंद्रिय होय, तेने विकलेंड्रिय कहीए. आ ठेकाणे कोइ एवी आशंका करे, के एकेंड्रिय पण पंचेंद्रियनी अपेक्षाए न्यून ठे, तो तेने केम विकलेंड्रिय कहेता नथी? तेने उत्तर कहे ठे के, त्रस अने स्थावर जीव ठे, तेमां स्थावरव्यापक सकल लोक ठे, अने विकलेंद्रियनो सद्भाव तिर्यग्लोके ज ठे, ते माटे त्रसमांहे विकलेंद्रियपणुं कहेवाय

है जिनमें कि मोही मन लीन होकर अपने आत्मस्वरूप को नहीं पहचानता।

परन्तु निज आत्मस्वरूप का पहिचानना दूर रहे, हम कभी इस बात का विचार तक नहीं करते हैं कि साता वेदनी व असाता वेदनी का आश्रव किन किन बातों से होता है। इसी हमारे विचार के न होने ही के कारण हम बाल्य विवाह करते शंका नहीं करते, हम वृद्ध विवाह करते डरते नहीं, हम बालकों को विद्वान करने की परवाह नहीं करते, हम अपनी जाति के भाइयों को दिन पर दिन अवनत दशा में प्राप्त होते हुए भी उन फिजूल खर्ची आदिक कारणों को नहीं रोकते। क्या कहें, यदि कोई विद्वान मंडली इन जैन धर्म के सम्यक उपदेशों को चित में धारण करे तो उस मंडली को कैसे सुख और शांतता की प्राप्ति हो सो कुछ शुमार में नहीं आ सकता।

अध्याय आठवां।

मोहनी कर्म।

यह वह कर्म है जिसके कारण यह जीव अपने से जुदी चीजों में ऐसा लुभा जाता है कि अपने आपको भूल जाता है। जैसे मदिरा (शराब] का नशा चढ़ता है, वैसेही मोह का नशा होता है। इस कर्म के खास खास भेद दो हैं—(१) दर्शन मोहनी, (२) चारित्र मोहनी।

प्रसंगे प्राप्त थयेलो पांच इंद्रियोना त्रेवीश विषय कहे छे—हलवो, जारी, सुंवालो, खरखरो, लूखो, चोपड्यो, टाढो, उनो ए आठ विषय स्पर्शनेंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो जाणे नहीं. तीखो, कडवो, कषायेलो, खाटो, मीठो ए पांच विषय रसनेंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो न जाणे. सुरभिगंध, दुरभिगंध, ए वे विषय घ्राणेंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो न जाणे. कालो, नीलो, रातो, पीलो, धोलो ए पांच विषय चक्षुरिंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो न जाणे. जीवशब्द, अजीवशब्द, मिश्र शब्द ए त्रण विषय श्रोत्रेंद्रियज जाणे, पण वीजी चार इंद्रियो जाणे नहीं. ए पांचे इंद्रियोना विषय एकठा करत त्रेवीश थाय. तेनुं जाणपणुं मन सहित जीव, ते जे इंद्रियमां जले, ते इंद्रिय पोताना विषयने जाणे, पण जीवना व्यापार विना इंद्रियो सर्व जडरूप छे, माटे विषयने न जाणे.

दर्शन मोहनी हमारे विश्वास [अकीदे] को मद की दशा में रखती, याने जिसके कारण हमारा विश्वास ठीक नहीं होता।

चारित्र मोहनी के कारण हमारा आचरण मतवारे का ऐसा होता है, याने उचित व्यवहार अपने मन बचन काय का नहीं होना।

दर्शन मोहनी ३ प्रकार है—

(१) मिथ्यात्व, (२) सम्यक् मिथ्यात्व, (३) सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व।

(१) मिथ्यात्व, जिसके उदय से तत्वार्थ का श्रद्धान न हो, याने जीव अजीव वगैरह तत्वों के जो असली मतलब हैं उस पर यकीन न हो। इसी तरह इन तत्वों के स्वरूप को बतलाने वाले देव, गुरु शास्त्र का भी ठीक विश्वास न हो, रागी द्वेषी देवों को देव माने, रागी द्वेषी परिग्रहधारी गुरुओं को गुरु माने, हिंसा के पुष्ट करनेवाले व संसार से प्रीति बढ़ानेवाले शास्त्रों को शास्त्र माने, आदि मिथ्यात्व है।

(२) सम्यक् मिथ्यात्व—जीव अजीव आदि तत्वों का व देव गुरु शास्त्र का कुछ तो श्रद्धान होय और कुछ न होय, याने सम्यक और मिथ्यात्व मिले हुए होंय। जैसे दही और गुड का मिला हुआ स्वाद होता है।

(३) सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व—जिसके उदय से सम्यक बिगड़े तो नहीं परन्तु श्रद्धान में मैलापन रहे। जैसे जीवादि

विस्तारार्थः—(पणिंद्रियत्तिबलूसासआउ के०) पंचेंद्रियत्रिबलोच्छ्वासायुंषि, एटले स्पर्शनेंद्रिय, रसनेंद्रिय, घ्राणेंद्रिय, चक्षुरिंद्रिय तथा श्रोत्रेंद्रिय ए पांच इंद्रिय; मनोबल, वचनबल तथा कायबल, ए त्रण बल; श्वासोच्छ्वास, अने आयुष्य, एटले जे जीवने जवनी साथे नियत बंधक होय, ते ए (दस पाण के०) दश प्राणाः, एटले दश प्राण जाणवा.

कया कया जीवने केटला केटला प्राण होय? ते कहे छे—पृथिव्यादि पांच स्थावररूप (इगदुतिचउरिंदिणं के०) एकद्वित्रिचतुरींद्रियाणां, एटले एकेंद्रि, बेइंद्रि, तेइंद्रि तथा चौइंद्रियना अनुक्रमे (चउ छ सग अठ के०) चत्वारः षट् सप्त अष्ट, एटले चार, छ सात अने आठ प्राण होय, ते आ रीते एकेंद्रियने एक स्पर्शनेंद्रिय,

तत्वों का श्रद्धान तो है परन्तु कभी कभी निश्चयनय से सर्व जीव एकही स्वरूप हैं। इस बात को भूल जाना, भेद समझने लगना, अथवा सच्चे देवादि का स्वरूप तो मालुम है परन्तु कभी कभी ऐसा भ्रम करना कि शांतनाथ जी शांति के कर्त्ता हैं, पार्श्वनाथ जी ही हमारे सुख के दाता, याने कभी कभी सर्व ही अरहंत देवों को एक सा न समझना।

चारित्र मोहनी के २५ भेद हैं। इनमें नौ नोकषाय कहलाते हैं और १६ कषाय हैं।

नौ भेद नोकषाय के यह हैं—

(१) हास्य—जिसके उदय से हास्य (मज़ाक) प्रकट हो। (२) रति—जिसके उदय से संसारी चीजों में नचिंत्त लीन हो जाय। (३) अरति—जिसके उदय से कुछ सुहावे नहीं। (४) शोक—जिसके उदय से किसी इष्ट के वियोग होने से रंज करे। (५) भय—जिसके उदय से दुःखकारी चीज़ से डरे। (६) जुगुप्सा जिसके उदय से अपना दोष (ऐब) छिपावे और दूसरे के दोष देख परिणाम मैले करे याने नफरत करे। (७) स्त्री वेद—जिसके उदय से स्त्री सम्बन्धी भाव होय। (८) पुरुष वेद—जिसके उदय से पुरुष सम्बन्धी भाव होय। (९) नपुंसक वेद—जिसके उदय से नपुंसक सम्बन्धी भाव होय।

१६ कषाय यह हैं—क्रोध (गुस्सा), मान (गरूर), माया (कपट दगाबाजी), लोभ (लालच) यह चार कषाय हैं। इन चारों के चार चार भेद हैं याने अनन्तानुबन्धी क्रोध व

जे संमूर्छिम तिर्यंच, ए असंज्ञी संमूर्छिम पंचें-
द्रियने उपर कहेला आठ प्राणनी साथे श्रोत्रें-
द्रिय जोड्याथी (नव के०) नव प्राण होय. एमां
एटलु विशेष समजवानुं छे के, संमूर्छिम वे प्रका
रना होय छे. एक संमूर्छिम मनुष्य अने वीजा
संमूर्छिम तिर्यंच, तेउमां संमूर्छि तिर्यचने तो
कहेला नव प्राण होय छे, एवो नियम छे; पण
संमूर्छिम मनुष्यने वचनवल नहीं होवाने लीधे
आठज प्राण होय छे, तेमां पण जो श्वासोछ्वास
पर्याप्ति बांधतो छतो मरण पामे, तो सातज प्राण
रहे छे; अने जे मातापिताना संयोगे करी गर्भ-
ने विषे उत्पन्न थाय छे, एवा मनुष्य तथा ति-
र्यंच, जे गर्भज जातिना होय, तथा नारकी
कुंभीमां उपजे छे, अने देवता उत्पादशय्यामां
उपजे छे, पण मातापिताना संयोगे गर्भमां उप-
जता नथी, तोपण देवता अने नारकी संज्ञी

मान व माया व लोभ, अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध व मान व माया व लोभ, प्रत्याख्यानावरणी व मान व माया व लोभ संज्वलन क्रोध व मान व माया व लोभ। इस प्रकार १६ भेद हैं।

अनन्तानुबन्धी— यह है जिसके उदय से अनन्त संसार का बन्ध हो, यानी ऐसा गुस्सा व गरूर वगैरह होना कि जो तबियत से कभी दूर न हो।

अप्रत्याख्यानावरणी —यह है जिसके उदय से ऐसा गुस्सा, गरूर, लालच व मायाचार होना कि जिससे गृहस्थी के करने के लायक श्रावक के १२ व्रत पालन के भाव नहीं हों।

प्रत्याख्यानावरणी—यह है जिसके उदय से ऐसा क्रोधादि होना कि मुनियों के व्रत को नहीं पाल सके।

संज्वलन—यह है जिसके उदय से ऐसा क्रोधादि होना कि अपने पूर्ण शुद्ध स्वभाव में बराबर लीन न रह सके।

यह २५ भेद चारित्रमोहनी के और ३ भेद दर्शन मोहनी के मिला कर कुल २८ भेद मोहनी कर्म के हैं।

अब यह मोहनी कर्म किन किन बातों से आश्रव रूप होता है इसका विचार करना चाहिये।

भाइयो! दर्शनमोहनी कर्म के कारण यह हैं—(१) केवली (जो ४ घातिया कर्मों को नाश कर केवल ज्ञान हासिल करके तीनलोक व अलोक को जान कर निरावृत हो गए) की निन्दा करनी या उन्हें दोष लगाना। (२) और शास्त्र (जो कि

बने छे, एवा मननो जे व्यापार ते छठुं मनोबल-रूप प्राण जाणवो. जाषापर्याप्ति नामकर्मना उदयथी जाषायोग्य पुद्गलवर्गणा काययोगे ग्रहण करी जाषापणे परिणमावी अवलंबीने वचन-योगवडे छोमवानी जे शक्ति ते सातमुं वचनबल-रूप प्राण जाणवो, शरीरनो जे व्यापार (शक्ति) ते कायबलरूप आठमो प्राण जाणवो उच्छ्वास-नामकर्मवडे अने उच्छ्वासपर्याप्तिवडे श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलवर्गणा ग्रहण करी श्वासोच्छ्वासपणे परिणमावी अवलंबीने छोमवानी जे शक्ति, ते श्वासोच्छ्वासरूप नवमो प्राण जाणवो. जेनावडे जीव कोइपण जवमां अमुक काळसुधी टकी शके, अथवा परजवमां अवश्य जइ शके, विव-क्षित जवमां जेटलो काळ रहे ते आयुः कहे-

दयामयी उपदेश से भरा है) की निन्दा करना यानी झूठा दोष लगाना। (३) संघ (मुनियों के संघ) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना। (४) देव (भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना याने कहना कि मांसभक्षी हैं। (५) धर्म (दयामयी धर्म) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना।

इन ५ बातों की तरफ मन वच काय चलने से तथा अन्य पदार्थों के सच्चे स्वरूप को मिथ्या कहने और मानने से दर्शन मोहनी कर्म का आश्रव होता है।

कषाय [क्रोध, मान, माया, लोभ] के होने से जो परिणाम में तेजी होना और इसी कारण वचन भी तेज निकालना व शरीर से भी खोटे आचरण करना, इनसे चारित्र मोहनी के कषाय वेदनी कर्म का आश्रव होता है। इसी तरह नोकषाय वेदनी का आश्रव इस भांति है कि दीन दुःखी की हँसी करने व बेमतलब बकने से हास्य का (१) योग्य काम को मना नहीं करने व दूसरे की पीड़ा को दूर करने इत्यादि से रति का (२), खोटी क्रिया में उत्साह, दूसरे को पीड़ा देने, व पापी की संगति करने से अरति का (३), आप रंज में रहने तथा दूसरों को रंज देने तथा दूसरे का रंज देख कर खुश होने से शोक का (४), आप भय में रहना व दूसरे को डर दिखलाना व निर्दई होकर दुःख देने से भय का (५), दूसरे की बुराई करने व अच्छे आचरणवाले से घृणा (नफरत) करने से जुगुप्सा का (६), अतिकाम—तीव्रता से

हवे अजीवतत्त्वनुं वर्णन करतां प्रथम अजीवतत्त्वना चौद भेद कहे छे-

धम्माऽधम्माऽगासा, तियतियभेया तहेव अद्धा य ॥ खंधा देस पएसा, परमाणु अजीव चउदसहा ॥ ८ ॥

गाथा ८ मीना छुटा शब्दना अर्थ.

धम्मा-धर्मास्तिकाय.	य-अने.
अधम्मा-अधर्मास्तिकाय.	खंधा-खंध.
आगासा-आकाशास्तिकाय.	देस-देश.
तियतिय त्रण त्रण.	पएसा-प्रदेश.
भेया-भेदो.	परमाणु-परमाणु.
तहेव-तेमज.	अजीव-अजीवतत्त्व.
अद्धा-काल.	चउदसहा-चौद.

विस्तारार्थः-(धम्माधम्मागासा के०) धर्माधर्माकाशाः, एटले धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, ए त्रण द्रव्य खंध, देश तथा प्रदेश एवा (तियतियभेया के०) त्रित्रिभेदाः त्रण

पर स्त्री का आदर तथा रागभाव करने व सेवने तथा स्त्री के स्वभाव अलिंगनादि के करने से स्त्री (वेदका) (७), थोडा क्रोध तथा कम लोभ, स्त्री सम्बन्ध में अल्पराग अपनी स्त्री में सन्तोष करने, ईर्षा का अभाव तथा स्नान, गन्ध, पुष्पमाला, आभरण से अनादर इत्यादि होने पुरुष वेदका (८), त्यारकषाय की तजा से तथा गुह्य इन्द्री के छेदन से, स्त्री पुरुष के काम के अंग छोड अन्य अंगों में व्यसनापने से, शीलवत व व्रता को उपसर्ग देन से, परस्त्री के संग के निमित्त तीव्र राग करन से नपुंसक वेद (६) का आश्रव होता है।

भाइयो! इस प्रकार मोहनी कर्म के भेद जान कर यह उद्यम करना चाहिये कि जिसमें हमारा मोह सांसारिक पदार्थों में विशेष न राग कर अपने जीव उद्धार की ओर लागे और हमको बहुत से बेमतलब कामों में अपना धन व मिहनत व समय बरबाद करना न हो। हम देखते हैं कि हमारे जैनी भाई भी बिलकुल जैनमत के उपदेश के विरुद्ध चलकर सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये कुदेव जैसे शीतला, देवी, भवानी, भैरों, क्षेत्रपाल आदि को मानते तथा संसार में आशक्त विषयों में प्रीतिधारक मिथ्यात्वी को भोजन देते व ब्रह्म की ओर से विमुख केवल ब्राह्मण जाति धारी विषय लीन ब्राह्मणों को दान देने से अपना भला होना मानते हैं।

भाइयो! क्या कहा जाय! हमारे जैनी भाई इसी मोहनी कर्म के फंदों में ऐसे उलझ हुए हैं, झूठ बोलने से डरते नहीं, दूसरे का माल हजम करने में शंका करते नहीं, देव द्रव्य के गटक जाने में कुछ पाप समझते नहीं, बालकों को

समूह (खंधा के०) स्कंधाः, एटले खंध कहेवाय छे. खंधनो केटलोएक जाग जेनो खंधनी साथे संबंध होय, ते (देस के०) देशाः, एटले देश कहेवाय छे. जेनी खंधनी साथे निर्विजाज्य कल्पना करी, उतां खंधनी साथे अजिन्न संबंध होय, ते (पएसा के०) प्रदेशाः, एटले प्रदेश कहेवाय छे, अने तेज प्रदेश जो खंधथी जिन्न थाय, एवा निर्विजाज्य जाग एटले जेना केवलीनी बुद्धिए एक जागना बे जाग थइ शके नहीं, ते (परमाणु के०) परमाणवः, एटले परमाणु कहेवाय छे. ए रीते ए पुद्गलास्तिकाय द्रव्यना चार जेद, ते पूर्वोक्त दश जेदो साथे मेलवतां (अजीव के०) अजीवः, एटले अजीवतत्त्व (चउदसहा के०) चतुर्दशधा, एटले चौद जेदे थाय ॥ ८ ॥

अजीवतत्त्वना पांच मूल जेद तथा तेनां लक्षण (स्वजाव) बे गाथाए करी कहे छे—

छोटी उमर में विवाह कर उनको मिट्टी के खिलौने समझ कर तमाशा देखने में आनन्द मानते, तथा उनको विद्या रत्न से विभूषित करने की परवा रखते नहीं, अपने समय को चमतलब चौसर सतरंज आदि में खोने से कुछ दोष मानते नहीं, अपने भाइयों को दिन पर दिन हीन दीन देख कर उनके सुधार व सुख के लिये प्रयत्न करते नहीं, जैन जाति की उद्धार करनेवाली भारत जैन महामंडल से बेपरवाह रह कर उसका सहायता देते नहीं, व्यापार की वृद्धि न्याय और सत्य से होती है उस पर ध्यान रखते नहीं। विशेष क्या कहिये, उत्तम मनुष्य कुली कहला करके भी साधारण मनुष्य भी होने की इच्छा रखते नहीं। भाइयो! मोह छोड़ो। यह महा दुःखदाई है। इसकी संगति से जीवों ने त्रास पाई है। जिन्होंने इस मोह के साथ बुराई की है उन्होंने व्यापार, धन, मान्यता, देशोपकार, जीव विचार आदि मे उन्नति पाई है।

अध्याय नवां।

५—आयुकर्म

आयुकर्म—वह कर्म है जिसके कारण यह जीव इस संसार मे नाना प्रकार की योनियो मे जा शरीर मे निवास कर भ्रमण करता हुआ कालक्षेप करता है।

इसके मुख्य ४ भेद हैं—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। (१) जिसके कारण नरक मे पैदा होकर नारकी के शरीर को

गाथा १० मीना छूटा शब्दना अर्थ.

अवगाहो—अवकाश (स्वभाव-गुण).
आगासं—आकाशास्तिकाय.
पुग्गल—पुद्गलने.
जीवाण—जीवने.
पुग्गला—पुद्गलद्रव्य.
चउहा—चार प्रकारे.
खंधा—खंध.
देस—देश.
पएसा—प्रदेश.
परमाणु—परमाणु.
चेव- निश्चे.
नायव्वा—जाणवा योग्य.

विस्तारार्थः—(धम्माधम्मा के०) धर्माधर्मौ, एटले धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, (पुग्गल के०) पुद्गलः एटले पुद्गलास्तिकाय, (नह के०) नभः, एटले आकाशास्तिकाय अने (कालो के०) कालः एटले काल, ए (पंच के०) पंच, एटले पांच (अजीवा के०) अजीवाः, एटले अजीवद्रव्य (हुंति के०) भवंति, एटले छे. ए पांचनी साथे जीवद्रव्य भेळवाथी षड्द्रव्य कहेवाय छे.

धारण करे सो नरक आयु है। (२) एकेंद्री वृक्षादि जीव से लेकर पचेन्द्री पशु पक्षी पर्यंत जलचर, थलचर, नभचर, आदि योनियों में रहने का कारण सो तिर्यंच आयु है। (३) मनुष्य भव में रहने का कारण सो मनुष्य आयु है। (४) देव की योनि में रहने का कारण सो देव आयु है।

यह जीव, अपने ही रागादि भावों के द्वारा अपने ही आत्मा पर पड़े हुए कर्म रूपी सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं के द्वारा अन्य सूक्ष्म परमाणुओं के आकर्षित किये जाने पर इन्हीं की शक्ति से प्रेरा हुआ स्वयं कभी नारकी, कभी तिर्यंच, कभी मनुष्य कभी देव हो जाता है, अर्थात् संसार की चार विशेष गतियों में भ्रमण किया करता है।

इस आयुकर्म के जीव के साथ सम्बन्धित होने के कौन कौन से कारण हैं इनका भी जानना आवश्यक है, अब प्रथम नरक आयु रूपी कर्मों के आश्रव का कारण कहते हैं। बहुत आरम्भ करना और परिग्रह में बहुत ममत्व करना सो नरक आयु के आश्रव के कारण हैं। प्रयोजन यह कि जिन जीवों के ऐसे परिणाम रहते हैं कि हम अपने पास धन, धरती, आदि पदार्थों का खूब बढ़ावें, चाहे वह धन, धरती आदि पदार्थ अन्याय चोरी मायाचारी, झूठ आदि उपायों से प्राप्त हों, अन्य का चाहे सर्वस्व जाता रहे हमें तो लाभ हो जाय, कृष्णलेश्या के रंग के भाव जिनके होते हैं उनको अवश्य नरक गति प्राप्त होती है। जो जीवों के घात, झूठ चोरी और परिग्रह में बहुत खुश होते हैं ऐसे रौद्रध्यानी जीव नरक ही के पात्र हैं। नरकगति में पड़े हुए जीवों को कितना व किस

प्रदेशी छे, जे उदासीन वृत्ति होय, तेने अपेक्षा कारण कहे छे. (अ के०) चकार पादपूरणार्थ उभयान्वयी अव्यय छे ॥ ए ॥

जे लोकालोकव्यापी शब्द, रूप, रस, गंध तथा स्पर्श रहित अरूपी अनंत प्रदेशी अने साकर ने दूधनी पेठे जेनो (अवगाहो के०) अवकाशः, एटले अवकाश स्वभावगुण ते (आगासं के०) आकाशं, एटले आकाशास्तिकाय कहेवाय. अर्थात् एक प्रदेशथी वीजा प्रदेशमां जतां जे अवकाशने आपे, तेने आकाशद्रव्य कहीए. तेना वे भेद छे, एक लोकाकाश, वीजो अलोकाकाश, ए विशेषता छे. अहीं कोइ आशंका करे, के अवकाश कोने आपे छे? तेनो उत्तर ए छे के (पुग्गलजीवाण के०) पुद्गलजीवानां, एटले पुद्गल (पूरणगलणधर्मयुक्त—परमाणु) तथा

प्रकार का दुख होता है, इसका वर्णन यहां पर न कर केवल इतना कह देनाही बस होगा कि असहाय और छोटे छोटे पशु पक्षियों को जो कुछ दुख आप अपनी आंख के सामने देखते हैं, इससे करोड़ गुना दुख नारकियों को कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। कर्म के परमाणुओं के बल से यह आत्मा जिसका कि अपना स्वभाव ऊंचे जाने का है, नीचे को ओर आकर जन्म लेता है। जैसे आग को लो, जिस का स्वभाव ऊंचे जाने का है, पवन के बल के कारण इधर उधर को गमन करती है।

तिर्यंच् आयु के आश्रव का कारण मायाचार करना है, अर्थात् जो जीव धर्म के उपदेशक अपने को प्रकट करके अपने जाती मतलब को लिये हुए उपदेश कर दूसरों को झूठे मार्ग पर लगाकर अनर्थ कराते हैं, ऐसे जीव पशु-पर्याय पाते हैं। जो दूसरे को झूठा दोष लगा कर उसका अपमान करके अपने में नहीं होते गुणों का प्रकट कर अपना मान चाहते है, ऐसे कपोतलेश्या के रंग के परिणामवाले जीव पशुगति के पात्र हैं। जो जीव अपनी किसी अच्छी चेतन व अचेतन जीव के बिछुड़ने पर शोक करते हैं, व बुरी चेतन व अचेतन चीज़ के पास रहते हुए रंज किया करते हैं, व आप रोगी होकर उस रोग के कारण उपाय तो नहीं बल्कि सोच किया करते हैं, व जिन जीवों को इच्छाएं यह रहती हैं कि हमे मरने के बाद खूब धन सम्पदावाली पर्याय प्राप्त हो, हम राजा महाराजा होकर खूब चैन उड़ावें, ऐसे आर्त्तध्यानी जीव पशुगति में आकर भूख,

गाथा ११ मीना छूटा शब्दना अर्थ.

सद्द—शब्द.	वण—वर्ण.
अंधयार—अंधकार.	गंध—गंध.
उज्जोअ—उद्योत, प्रकाश.	रसा—रस.
पभा—प्रभा, ज्योति.	फासा—स्पर्श.
छाया—छाया, कांति.	पुग्गलाणं—पुद्गलोनुं.
तवेहि—आतप.	तु—निश्चयपणे.
आ—वा, अथवा.	लक्खणं—लक्षण

विस्तारार्थः—सद्दंधयारउज्जोअप्रभाछायातवेहि के०) शब्दांधकारोद्योतप्रभाछायातपैः, एटले सचित्त, अचित्त अने मिश्र, ए त्रण प्रकारमांना गमे ते प्रकारनो शब्द तथा अंधकार, तथा रत्न प्रमुखनो, प्रकाश, तथा चंद्रमा प्रमुखनी ज्योति तथा छाया (जलदर्पणादिमां भासतुं प्रतिबिंब अने सूर्य प्रमुखनो आतप, आ वस्तुओ वडे पुद्गल ओळखाय छे. (आ के०) वा, एटले बीजा नीचला पदार्थ पण जाणवा. (वणगंधरसा के०) वर्णगंधरसाः एटले कृष्ण पीतादि वर्ण, गंध,

प्यास गरमी, सरदी, मार आदि की ऐसी ऐसी वेदनाएं सहते हैं कि हम उनका यदि विचार करें तो शरीर का रोंया रोंया कांप उठे। कर्मों की प्रेरणा से यह जीव स्वयं कभी वृक्ष होता है, कभी भाग, कभी चोटी, कभी हाथी कभी सिंह, कभी बकरी, गाय आदि होता है। निश्चय से अपने परिणाम ही अपने को दुखदाई हैं।

मनुष्य आयु में जाने के कारण यह हैं—

जो जीव थोड़ा आरम्भ मतलब भर करते ही से व थोड़ा मतलब भर परिग्रह (सामान) के धरने ही से सतोषी रहते हैं जिनके चित्त दया भाव से भाजे हुए अन्याय से डरते हैं, तथा जो दूसरे का बुरा नहीं चाहते हैं, ससार से भी जिनके बहुत प्रीति नहीं होती, दान, पूजा आदिक में जिन के भाव विशेष लवलीन होते हैं, ऐसे धर्मध्यानी जीव मनुष्य आयु का प्राप्त करते हैं और जिनके चित्त कोमल होते हैं दिल में जरा सा भी मान जिन के नहीं होता, ऐसे विचारवान प्राणी मनुष्य आयु का आश्रव करते हैं।

देव आयु के आश्रव के कारण इस भांति है—जो महाव्रती योगी की दशा को धारण कर आत्म ध्यान करते हैं व जो गृहस्थ श्रावक व्रतशील को पालते हैं और अन्त में सन्यास लेते हैं ऐसे जीव अवश्य देवगति पाते हैं। अथवा जो किसी दूसरे के भय से व लाचार हो भूख प्यास रात्रि जगन व गर्मी सर्दी की बाधा सहते हैं और परिणाम जिनके कोमल होते हैं, ऐसे अकाम निर्जरावाले जीव भी छोटी जाति के देव होते हैं जो अज्ञान तप करते हैं अर्थात् आत्मा को नहीं जान

गाथा १२ मीना छूटा शब्दना अर्थ.

एगाकोडि—एक क्रोड.
सतसट्ठि—सडसठ.
लक्खा—लाख.
सत्तहुत्तरी—सत्योतेर.
सहस्सा—हजार.
य—अने.
दो य सया—बसें
सोलहिया—सोळ अधिक.
आवलिया—आवलिका.
इग—एक.
मुहुत्तम्मि—मुहुर्त्तमां.

विस्तारार्थः—(एगा कोडि के०) एका कोटिः, एटले एक क्रोड, (सतसठि लक्खा के०) सप्तषष्टि लक्षाणि, एटले सडसठ लाख, (सत्तहुत्तरि सहस्सा के०) सप्तसप्ततिः सहस्राणि, एटले सत्योतेर हजार, (दो य सया के०) द्वे च शते, एटले बसें अने (सोलहिया के०) षोडशाधिके, एटले सोल उपर, एटली (आवलिया के०) आवलिकाः, एटले आवलिकाओ (इगमुहुत्तम्मि के०) एक मुहुर्ते, एटले एक मुहूर्त्तमां थाय छे. (य के०) चकार पादपूरणार्थ उन्नयान्वयी अव्यय छे. हवे

कर व भावों की शुद्धता को न पहिचान कर शरीर को तरह तरह कष्ट देते हैं इस निश्चय से कि इसके बाद अच्छी गति होगी, ऐसे जीव भी मर कर नीच जाति के देव होते हैं। जो जीव सम्यग्दृष्टी होते अर्थात् जिनके आपा पर का अच्छी तरह ज्ञान और निश्चय होता है, ऐसे जीव स्वर्गवासी देवही होते हैं। भोगभूमि के पैदा होने वाले मनुष्य जो शील और व्रत नहीं पालते हैं अपने सरल स्वभाव के कारण देवगति में गमन करते हैं। देवगति में इन्द्रियाधीन सुख की बाहुल्यता है तो भी उस स्थान में मन सम्बन्धी अनेक दुख हैं, जैसे ईर्षा, द्वेष, अपमानादिक। भाइयो! यहां संक्षेप में चारो आयु में जीवों को रखनेवाले कर्मों के आश्रव का वर्णन किया है। विशेष जानने की इच्छा करनेवालो को श्री सर्वार्थसिद्धि जी को भले प्रकार पढना चाहिये। प्रयोजन कहने का यह है कि मनुष्य भव पाकर हमको वह कर्तव्य करने योग्य है जिनसे हमारी अवस्था दिन पर दिन उच्च होती चली जाय। क्योंकि जीवन संसार में थोड़ा है। इस थोड़ी सी आयु पाकर यदि हमने अपने आत्मा को निर्मल करने के यत्न नहीं किये अर्थात् संसार से मुक्ति पाने की चेष्टा नही की तो फिर हमारा सुधार कैसे होगा। यह मनन कदाचित जीवों की अज्ञानता में दब जाय और हम बावले की तरह कर्मरूपी नशे से प्रेरे हुये संसार वन के चारों मार्गों की अनेक गलियों में भटके रहें व इस भयानक वन से निकलने का मार्ग कभी नही पावें तो इसमे कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु यदि इस संसार वन मे धीरे धीरे सोचते विचार करते कदम रख रख कर, इस वन की मोहनी वस्तुओं से मोह न करते हुये, न

आवली कहे छे. एवी वसें ने छप्पन आवलीए एक क्षुल्लक भव थाय छे. ए करतां बीजा कोइ पण नाना भवनी कल्पना थइ शके नहीं. एवा कांइक अधिक सत्तर क्षुल्लक भवमां एक श्वासोह्वासरूप प्राणनी उत्पत्ति होय छे. एवा सात प्राणोत्पत्ति कालने एक स्तोक कहे छे. एवा सात स्तोकसमये एक लव थाय छे एवा सत्योतेर लवे बे घमीरूप एक मुहूर्त्त थाय छे. ते एक मुहूर्त्तने विषे पूर्वोक्त १६७७७२१६ आवली होय छे ॥१२॥

हवे वृद्धि पामता व्यवहार कालना प्रकार कहे छे.

समयाऽवली मुहुत्ता, दीहा पक्खा य
मास वरिसा य ॥ भणिओ पलिआ
सागर, उस्सप्पिणी सप्पिणी कालो १३

ससार में भयदायक वस्तुओं से डरते हुए, साहस की कमर बाध सीधे मार्ग पर चल जायगे तो निस्सन्देह इस वन से निकल कर अपना घर जो मुक्ति है उसको प्राप्त करेंगे। भाइयो ! ध्यान दीजिये।

अध्याय दसवां

६—नामकर्म

नाम कर्म वह कर्म है जिसके उदय होने से तरह तरह का शरीर, व उसके अंग बनते हैं—अर्थात् इस उदय के वश से तरह तरह की ऐसी अवस्थाएं हो जाती हैं जिनसे जीवात्मा एक प्रकार की पर्याय संज्ञा में गिने जाते हैं। जैसे यह अंधा है लूला है, अंधा है, बहिरा है, इत्यादि।

नाम कर्म की ९३ प्रकृति है—

४ गति—जिसके उदय से जीवात्मा एक जन्म से दूसरे जन्म को जाय वह गति नरक तिर्यंच, मनुष्य देव ऐसी चार हैं। [नोट—दूसरा जन्म धारण करने में आयु के साथ नाम कर्म भी सहायक होता है।]

५ जाति—जिसके उदय से इस जीवात्मा के १ इन्द्री व २ इन्द्री व ३ इन्द्री व ४ इन्द्री व ५ इन्द्री शरीर में पैदा हों।

५ प्रकार का शरीर—पुद्गल (Matter) के जिस तरह के परमाणुओं से शरीर बनता है उसके पांच भेद हैं।

(क) औदारिक—जो शरीर अपनी माता के खून और पिता के वीर्य से गर्भ में बनता है उसे गर्भज कहते हैं और

उत्सर्पिणी अने (सप्पिणी के०) अवसर्पिणी, ते अवसर्पिणी, ए सर्व (कालो के०) कालः, एटले काळ (त्रणिओ के०) जणितः, कहेवाय छे. ते-ओमां अनुक्रमे वृद्धिनुं प्रमाण बतावे छे. अति सूक्ष्म कालने समय कहे छे, असंख्याता समय-नी एक आवली थाय छे, एवी (१६७७७२१६) आवलीए एक मुहूर्त्त थाय छे, त्रीश मुहूर्त्ते एक अहोरात्रिरूप दिवस थाय छे. पंदर अहोरात्रिए पखवाडीयुं थाय छे. बे पखवाडीये एक महीनो थाय छे. बार महीने एक वर्ष थाय छे. तेमज असंख्याता वर्षे एक पल्योपम थाय, तेवा दश कोडाकोडी पल्योपमे एक सागरोपम थाय, तेवा दश कोडाकोडी सागरोपमे एक उत्सर्प्पिणी अने बीजा दश कोडाकोडी सागरोपमे एक अवस-र्प्पिणी थाय. ए बे मलीने वीश कोडाकोडी सा गरोपमे एक कालचक्र थाय, एवा अनंता काल

जो गर्मी, सरदी, आग, पानी, मिट्टी आदि वस्तुओं के संयोग से तरह तरह के लट, जूयें आदिकों के शरीर बनते हैं उसे सन्मूर्छन कहते हैं। यह दोनों तरह के शरीर औदारिक कहलाते हैं।

(ख) वैक्रयक–देव व नारकियों के शरीर जिस तरह के परमाणुओं से बनते हैं उसे वैक्रयक कहते हैं, अर्थात् इनमें सकुड़ जाने, फैलजाने, आदि की शक्ति होती है, तथा यह परमाणु पारे की तरह भिन्न हो जाने पर भी शीघ्र मिल जाते हैं।

(ग) आहारक—एक प्रकार का बहुत ही महीन पुद्गल के परमाणुओं का शरीर जो ऋद्धिधारी मुनि के मस्तक से निकलता है और केवल ज्ञानी के चरणों को छू कर लौट आता है, इसके जाने आने में कुछ समय लगते हैं। जब मुनि को कोई भारी संदेह होता है तब वह ऐसा करते हैं।

(घ) तैजस—यह बहुत ही महीन तेज रूप परमाणु हैं जो कि संसार के सब जीवों के साथ सदा रहते हैं और इनका वेग किसी किसी ऋद्धिधारी मुनि में प्रकट हो जाता है, अर्थात् जब मुनि के चित्त में अधिक दया आती है तो दाहने कन्धे से यह तैजस शरीर निकल कर बहुत शीघ्र उनके विचारे हुए क्षेत्र में भ्रमण कर लौट आता है और उतने स्थान के रोगादि को शांत कर देता है। इसी प्रकार जब किसी मुनि के क्रोधकी आग भड़क उठती है और वह चितमें जिनसे क्रोध हुआ उनका नाश विचारते हैं, तब बायें कन्धे से एक तेजका पुंज निकलता है और वह उनको भस्म कर मुनि को

गाथा १४ मीना छुटा शब्दना अर्थ.

परिणामि–परिणामि.	य–अने.
जीव–जीव.	णिच्च–नित्य.
मुत्तं–मूर्त्तिमंत.	कारण–कारण.
सपएसा–सप्रदेशी.	कत्ता–कर्त्ता.
एग–एक.	सव्वगय–सर्वगत.
खित्त–क्षेत्र.	इयर–इतर (असर्वगत).
किरिआ–सक्रिय.	अप्पवेसे–प्रवेश रहित.

विस्तारार्थः–छ द्रव्यमां जीव अने पुद्गल, ए, बे द्रव्य (परिणामि के०) परिणामिनो, एटले परिणामि (एटले एक अवस्था छोडी बीजी अवस्थामां चवारूप परिणामवाळा) हो तेमां गति[४] इंद्रिय[५], कषाय[४], लेश्या[६], योग[३], उपयोग[१२], ज्ञान[५], दर्शन[३], चारीत्र[७] वेद[३] एम दश परिणाम जीवना अने बंधन, गति, संस्थान, भेद, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु अने शब्द, ए दश परिणाम पुद्गलना छे. बाकीनां चार द्रव्य अपरिणामी छे.

भी भस्म कर देता है। इस तेजस शरीर को विद्युत शरीर के समान कहा जा सकता है।

(ख) कार्माण एक प्रकार के बहुत ही महीन पुद्‌गल के परमाणु—जाकि आत्माके साथ एक सूक्ष्म शरीर बनाये हुये ससार अवस्था में सदा साथ रहते हैं। इन परमाणुओं की कर्म सज्ञा है। भावों के कारण इनका मेल होता है और यह जीवात्मा क साथ रहते हुय समय समय पर अपना असर दिखलाया करते हैं जिससे मोहवान जीव सुख तथा दुख अनुभव करते हैं।

३ अगोपाग—जिनके उदय से अग व उसके भाग बने, जैसे शरीर के आख, नाक आदि। औदारिक वक्रयक, आहारक इन तीन प्रकार के शरीर ही के अगापाग हात हे।

२ निर्माण—जिसके उदय से आख, नाक कान आदि यथा स्थान होवें सा स्थान निर्माण तथा जिसके उदय से किसी प्रमाण रूप होवें सा प्रमाण निर्माण।

५ बन्धन—जिनके उदय से पाच प्रकार के पुद्‌गल परमाणुओं का परस्पर अपने अपने शरीर रुप बनना होय।

५ सघात—जिनके उदय से पाच प्रकार के शरीर रूप पुद्‌गल के परमाणु आपस में अपने अपने शरीर रूप एकसार मिल जाय।

६ सस्थान—जिनके उदय से शरीर का आकार [डील डौल] बने। इसके ६ भेद यह हैं—

[क] समचतुर सस्थान—आंख, नाक, कान, मुह, हाथ पैर का आकार मुनासिब सुन्दर बनना।

धर्म, अधर्म, आकाश अने काल, ए चार द्रव्य (णिच्चं के०) नित्याः, एटले सदा एक अवस्थामां रहेवारूप नित्य छे, बाकीनां बे अनित्य छे. य-द्यपि उत्पाद, व्यय अने ध्रुवपणे सर्व पदार्थ नित्यानित्यपणे परिणमे छे, तथापि धर्मादिक चार द्रव्य सदा अवस्थित, माटे नित्य कह्यां. छ द्रव्यमां धर्मादिक पांच द्रव्य (कारण के०) कारणानि, एटले कारण छे. एक जीवद्रव्य अ-कारणरूप छे. छ द्रव्यमां एक जीवद्रव्य (कत्ता के०) कर्ता, एटले कर्त्ता छे, बीजा पांच अकर्त्ता छे. छ द्रव्यमां एक आकाश (सव्वगय के०) सर्व-गतं, एटले सर्वगत छे, अने बीजां पांच द्रव्य मात्र लोकव्यापी छे, माटे असर्वगत जाणवां. तथा यद्यपि छ द्रव्य क्षीर नीर परे परस्पर अ-वगाढ छे, तथापि (इयरअप्पवेसे के०)इतराप्रवे-शाः, एटले एक बीजामां अरस्परस प्रवेश रहित

[ख] न्यग्रोध परिमंडल संस्थान-शरीर का आकार ऊपर बड़ा और नीचे छोटा हो। जैसे बड़ वृक्ष।

[ग] स्वातिक संस्थान—शरीर का आकार नीचे चौड़ा ऊपर सकुब्जक।

[घ] कुब्जक संस्थान-पीठ—बीच में बड़ी ऊपर नीचे हल्की हो। इसको कुबड़ापन भी कहते हैं।

[च] वामन संस्थान—हाथ पैर छोटे हों उदर मस्तक बड़ा हो अर्थात् बौनापन हो।

[छ] हुंडक संस्थान—शरीर के सब अंग उपग नीचे ऊंचे बेढंगे हों।

६ संहनन—जिनके उदय से हाड़ों का विशेष बंधन हो। यह भी ६ प्रकार का है—

[क] वज्र ऋषभ नाराच संहनन—जिस शरीर में संहनन कहिये हाड़, ऋषभ कहिये नश के वेठन, नाराच कहिये कीले, यह तीनों वज्रमय कठोर हों।

[ख] वज्र नाराच संहनन—जिसमें हाड़ और कीले वज्रमय हों पर नश के बन्धन वज्रमय न हों।

[ग] नाराच संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि कीलों से कीलित हो।

[घ] अर्धनाराच संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि में कीले आधे हों, एक तर्फ हो पर दूसरी ओर न हो।

[च] कीलक संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि छोटे कीलों से मिला हो।

[छ] असंप्राप्तासृपाटिक संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि में अन्तर [फरक] हो। चौगिर्द बड़ी छोटी नस

धारवुं, पोषवुं तेने धर्म कहीए, अने (अस्ति के०) प्रदेश तेनो (काय के०) समूह, तेने धर्मास्तिकाय कहीए. तेमज २ गति क्रिया परिणत जीव तथा पुद्गलने अवष्टंभदानस्वभावलक्षण ते अधर्मास्तिकाय द्रव्य कहीए, तेमज ३ गति क्रिया परिणत जीव तथा पुद्गलने अवकाशदान लक्षण स्थिति अंतर्गत प्रविष्ट कीलकन्याये आकाशास्तिकाय द्रव्य जाणवुं. तथा ४ समस्त वस्तु समुदायनुं कलन-संख्यात अथवा समयावलिकादिके करी सचेतनाचेतन पदार्थने जेणे करी कलीए, एटले जाणीए, एवुं अमूर्त्त लोकव्यापी वर्त्तनालक्षण असंख्य समयात्मक नैश्चयिक समय लोकव्यापी अनंत समयात्मक कालद्रव्य जाणवुं. तथा ५ पूर्ण गलन स्वभाव ते पुद्गल अनंत अणुस्कंध पर्यंत जे परमाण्वादिक, ते कोइक द्रव्यथी गले, वियोग पामे, तथा स्वभाव

लिपटी हो, मांसादिक से छाई हो। यह सब संहनन मनुष्य और तिर्यंच के होते हैं, देवनारकियों के नहीं, क्योंकि उनके हाड नहीं होते हैं।

(६) स्पर्श—जिनके उदय से शरीर के स्पर्श [छूने] के गुण पैदा हों। यह ८ प्रकार का है—कर्कश, कोमल, भारी, हलका, चिकना, रूखा, ठंढा, गरम।

५ रस—जिनके उदय से शरीर में रस पैदा हों। वे पांच प्रकार के हैं—तेज, कड़ुवा, मीठा, खट्टा, कषायला।

२ गंध—जिनके उदय से शरीर में गंध हो। यह दो प्रकार का है—एक सुगंध, एक दुर्गंध।

५ वर्ण—जिनके उदय से शरीर में रंग पैदा हो। यह पांच प्रकार का होता है—काला, नीला सफेद, लाल, हरा।

४ आनुपूर्वी—जिनके उदय से आनुपूर्वी हो। आनुपूर्वी का प्रयोजन यह है कि मरण होने के पीछे जब तक यह शरीर धारण करने के लायक पुद्गल नहीं लेवे तब तक आत्मा का पहिले शरीर का सा आकार बना रहता है। यह आनुपूर्वी अधिक से अधिक ३ समय तक रहती है। यह ४ गति की अपेक्षा ४ प्रकार की होती है। जैसे कोई मनुष्य मर कर देव गति को जाता हो तब जब तक देवमई पुद्गल नहीं लेवे तब तक कर्म सहित आत्मा का आकार मनुष्य शरीर के सदृश रहना सो देव गत्यानुपूर्वी है।

यह ६५ पिंड प्रकृति कहलाती हैं। अब आगे २८ अपिंड प्रकृति कही जाती हैं।

छे? तेनुं समाधान करे छे.

जीवद्रव्यने वर्त्तना, परिणाम, क्रिया, अने परावर्त्तादिक, ए सर्व कालव्यपदेशभाक् छे, तेमां जे जीवने सादि सांतादि चार भेदे वर्त्तवुं, ते वर्त्तना जाणवी. तथा जे विश्वासाप्रयोगे जीवद्रव्यनी परिणति, ते परिणाम जाणवो. तथा भूत, भावि अने भविष्यत् विशेषणवंत जीवने गमन स्थित्यादि कार्यनी चेष्टा, ते क्रिया जाणवी.

तथा पूर्वभावि पश्चाद्भावी परापर इत्यादि यदाश्रये द्रव्यने कहेवुं, ते परापरत्व जाणवुं. ए प्रकारे वर्त्तनादिक सर्व द्रव्यना पर्याय छे, ते सर्व कालव्यपदेशभाक छे, जे माटे कथंचितपणे द्रव्यथी अभिन्न द्रव्यनामी पर्याय पण कहीए, ते माटे पर्यायने द्रव्यपणुं करतां अनवस्था प्रसंग थाय, माटे काल ते पृथक द्रव्य नहीं. वर्त्तनात्मक काल जीवाजीव द्रव्य पर्यायपणे मानवो.

१ अगुरुलघु—जिसके उदय से देह न लोहे के पिंड की तरह भारी हो और न आक की फफूंदी की तरह हलकी हो। [यहां अगुरुलघु जो द्रव्य का स्वभाव है उससे प्रयोजन नहीं]

१ स्वघात—जिसके उदय से अपने शरीर से आपका घात करे-जैसे बड़ा, सींग, लम्बा स्तन बड़ा पेट।

१ परघात—जिसके उदय से ऐसा अंग हो जिससे दूसरे का घात हो। जैसे तीक्ष्ण सींग व नख, बिच्छू का डङ्क आदि।

१ आताप—जिसके उदय से आतापमय शरीर पावे। जैसे सूर्य के विमान में पृथ्वी कायिक जीव। इन जीवों को स्वयं धूप की गरमी नहीं मालूम होती जब कि दूसरों को बहुत आताप होता है।

१ उद्योत—जिसके उदय से उद्योत रूप शरीर पावे। जैसे चन्द्र के विमान में पृथ्वी कायिक जीव।

१ उच्छ्वास—जिसके उदय से श्वासोश्वास आवे।

१ विहायो गति—जिसके उदय से आकाश में गमन हो।

१ प्रत्येक शरीर—जिसके उदय होने से एक आत्मा एक शरीर को भोगे।

१ साधारण—जिसके उदय से बहुत जीव भोगने योग्य एक शरीर पावे।

१ त्रस—जिसके उदय से दो इन्द्री से पंचेन्द्री तक में उपजे।

१ थावर—जिसके उदय से १ इन्द्री पैदा हो।

१ सुभग—जिसके उदय से दूसरे को अच्छा मालूम हो।

लिकादिक प्ररूपणा मात्र व्यवहार नयने मते छे, अने निश्चय नयने मते कालने विशे प्रदेशाजाव छे, ते माटे कालने विवे अस्तिकायपणुं कहेवुं घटमान नथी, अने गुणना आश्रयमाटे द्रव्यपणुं घटमान छे, "गुणाणमासउ दव्वं" इति वचनात् ते माटे द्रव्यथी वर्त्तनालक्षण अने कालथी अनादि अनंत तथ क्षेत्रथी समग्र क्षेत्रवर्त्ती अने जावथी रूपादि रहित अमूर्त्तिमंत अंकादिक चारे व्यंगित समयादिके परमाणुनी परे अनुमेय एवुं काल नामा द्रव्य पृथकपणे मानवुं, एहीज आप्त वाक्य प्रमाण करवुं. इत्यादिक कालद्रव्य संबंधी विशेष विचार ग्रंथांतरे बहुश्रुतना मुखथी जाणी लेवो. ॥ इति प्रसंगागतकालद्रव्यविचारः समाप्तः ॥

हवे शिष्य पूछे छे, के नवतत्त्वादिक सकल पदार्थने विषे जीवतत्त्वनी मुख्य प्ररूपणा कही,

१ दुर्भग—जिसके उदय से रूपादि सुंदर गुण होने पर भी दूसरे को बुरा मालूम पड़े।

१ सुस्वर—जिसके उदय से शब्द सुहावना निकले।

१ दुस्वर—जिसके उदय से बुरा असुहावना शब्द निकले।

१ शुभ—जिसके उदय से मुह, हाथ, पैर आदि शरीर के अंग सुंदर हों।

१ अशुभ—जिसके उदय से मस्तक मुख आदि असुन्दर [बदसूरत] हों।

१ सूक्ष्म—जिसके उदय से ऐसा महीन शरीर पावे जो जमीन, पहाड़, आग, जल, कपड़ा आदि में से होकर निकल जाय, रुके नहीं।

१ बादर—जिसके उदय से रुकने व रोकनेवाला शरीर पावे।

१ पर्याप्त—जिसके उदय से जिस पर्याय में जाय उसके अनुसार शरीर के भाग पूर्ण करने की शक्ति पावे।

१ अपर्याप्त—जिसके उदय से पर्याय सम्बन्धी शरीर के भागों को पूरा करने की शक्ति न पा कर तीन ही घड़ी के भीतर मरण कर जाय।

१ स्थिर—जिसके उदय से रस धातु उपधातु अपने अपने स्थान में दृढ़ हों।

१ अस्थिर—जिसके उदय से रसादि दृढ़ न हों।

१ आदेय—जिसके उदय से प्रभायुत [चमकदार] शरीर हो।

ग्रहण कीधुं छे. त्यार पछी प्रतिप्राणीने प्रत्यक्ष सिद्ध चैतन्यनी अन्यथानुपपत्तिमाटे जीवास्तिकायनुं ग्रहण कीधुं छे.

आशंका—धर्मास्तिकायादिक चार द्रव्यना देश अने प्रदेश छे, परंतु परमाणु नथी, तो परमाणुने साथे ग्रहण कर्या तेनुं, कारण शुं?

उत्तरः—मूलभेदे अजीवना नव भेद छे, तेमां चार अस्तिकाय द्रव्य, पांचमो खंध, छठो देश, सातमो प्रदेश, अने आठमो पुद्गलनो एक परमाणु तथा नवमुं कालद्रव्य छे. माटे ते नव भेद देखाडवा सारु परमाणु कह्यो.

आशंका—प्रदेश अने परमाणु ए बेठने निर्विभागरूपपणुं छे, माटे एमां शी विशेषता छे?

उत्तर—जे स्कंधप्रतिबद्ध निर्विभाग भाग ते प्रदेश, तथा जे एकाकी विकल्पित स्कंधपरिणाम रहित एवा लोकने विषे छूटा वर्त्ते छे ते,

१ अनादेय—जिसके उदय में प्रभारहित शरीर हो।

१ यशस्कीर्ति—जिसके उदय से गुण प्रकट हो।

१ अयशस्कीर्ति—जिसके उदय से अवगुण प्रकट हो।

१ तीर्थंकर—जिसके उदय से तीर्थंकर पद का शरीर हो।

यह २८ अपिंड प्रकृति हैं—

सब मिलकर ६३ प्रकृति नाम कम की हैं। अब यह देखना चाहिये कि यह नाम कर्म क्यों कर संसारी जीवों के बंधते हैं कि जिनके उदय से ऊपर कही अवस्थायें भोगनी पड़ती हैं, क्योंकि यह "कर्म" का नियम कारण और कार्य के आधीन है। इसीको Cause and effect कहते हैं और इन कर्मों का बन्धन राग और द्वेष से होता है जैसा कि "Mr. C. W. Leadwater का कथन है।

"If a man has within him only pure, high, and unselfish desires and emotions, he will chiefly set into vibration the more refined matter of that astral body: if, on the contrary his desires, emotions and passions are coarser and selfish, almost the whole of them will express themselves in the lower, denser, grosser parts of that astral vehicle."

भावार्थ—अच्छे विचारों से शुभ और बुरे विचारों से अशुभ कर्म्म बँधते हैं। पस यह कर्म्म समय समय पर उदय

हवे पुण्यतत्त्वनुं वर्णन करतां पुण्य नव प्रकारे बंधाय छे, अने बेंतालीश प्रकारे भोगवाय छे, ते कहे छे.

सा-उच्चगोअ-मणुदुग, सुरदुग-पंचें-
दिजाइ-पणदेहा ॥ आइतितणूणुवंगा,
आइम-संघयण-संठाणा ॥ १५ ॥

गाथा १५ मीना छूटा शब्दना अर्थ.

सा—शातावेदनीय.	आइ—आदिनां.
उच्चगोअ—उच्चगोत्र.	तितणूण—त्रण शरीर.
मणुदुग—मनुष्यद्विक.	उवंगा—उपांग (अंगोपांग)
सुरदुग—सुरद्विक	आइम—आदिम—पहेलुं.
पंचेंदिजाइ—पंचेंद्रि जाति.	संघयण—संघयण.
पणदेहा—पांच शरीर.	संठाणा—संस्थान.

विस्तारार्थः—साधु प्रमुखने पहेलुं अन्न दीधाथी, बीजुं पाणी दीधाथी, त्रीजुं रहेवाने स्थान देवाथी, चोथुं सूवाने पाट प्रमुख दीधाथी, पांचमुं पहेरवा अथवा ओढवाने वस्त्र दीधाथी, छठुं ते

आ कर अपना रस देते रहते हैं। इसीको कर्मफल कहते हैं। यही कर्मफल यदि राग द्वेष सहित भोगा जाता है तो आगामी कर्म बंधन का कारण हो जाता है। इस प्रकार संसार के मोही जीव एक ओर से कर्म का उदय फल पाते हैं, दूसरी ओर कर्म बांधते जाते हैं जो कर्म उसी भव में व दूसरे दूसरे भव में समयानुसार उदय में आकर रस देते हैं। यही "कारण और कार्य्य" का नियम संसारी प्राणियों को सुख दुःख का हेतु है।

नाम कर्म के आस्रव तथा बंध के कारण यह है। मन, वचन, और काय के कुटिल अर्थात् टेढ़े रखने से अशुभ नाम कर्म का आना होता है। जैसे मिथ्यात धरना चुगली खाना, खोटी वस्तु अच्छी में मिला कर बेचना, खोटा कसम खाना, मद करना, नकल चिढ़ाना, दूसरे के बुरे अंग देख खुश होना आदि। इसी प्रकार मन वचन काम का सरल रखने से शुभ नाम कर्म का आस्रव होता है। जैसे धर्मात्मा को देख खुश होना, प्रमाद न करना आदि।

पाठक! अपने परिणामों ही के आधीन हमारा भाग्य (Destiny) बनता है जिसको कर्म कहते हैं। इस लिये हमको अपने परिणाम निर्मल रखने चाहिये। तथा अन्धे, लूले, कुबड़े, काने आदि होने से बचने के लिये हमको अपने वचन और काय की चेष्टा भी ठीक ठाक रखनी चाहिये।

तीर्थंकर नाम कर्म बंध उस समय होता है जब सोलह

नाथ घालीने सीधो चलाववानी पेठे जेथी उप-
जवाने स्थानके पहोंची शकाय, तेने आनुपूर्वी
कहे छे) ए (सुरडुग के०) सुरद्धिकं, एटले सुर-
द्धिकरूप नामकर्म कहेवाय. ७ जेना उदये पंचें-
द्रियपणुं प्राप्त थाय छे, ते (पंचेंदिजाइ के०)
पंचेंद्रियजातिः, एटले पंचेंद्रिय जाति नामकर्म
कहेवाय. जेना उदये पांच शरीरनी प्राप्ति थाय
छे, ते कहे छे—ए जेथी औदारिक शरीरयोग्य
पुद्गल ग्रहण करीने तथा तेने शरीरपणे परि-
णमावीने जीव पोताना प्रदेशनी साथे मेलवे,
तेने औदारिक नामकर्म कहे छे. एवी रीते सर्व
शरीरने विषे योजना करवी. १ए वैक्रिय शरीरना
बे नेद छे. एक औपपातिक ते देवता तथा ना-
रकीने होय छे. बीजुं लब्धिप्रत्ययिक ते तिर्यंच
तथा मनुष्य लब्धिवंतने होय छे. १० आहारक
शरीर ते चौद पूर्वधर मुनिराज तीर्थंकरनी ऋद्धि

कारण भावना का विचार किया जाता है। इन भावनाओं का वर्णन जैन शास्त्रों से देख कर मालूम कीजियेगा।

अध्याय ग्यारहवां

७—गोत्रकर्म।

यह वह कर्म है जिसके उदय से यह जीवात्मा ऐसे कुल का संयोग पावे जिससे इसको दुख की प्राप्ति हो। यह दो तरह का होता है।

१ उच्च गोत्र—अच्छे चरित्र वाले लोकमान्य कुल में जिसके उदय से जन्मे।

१ नीच गोत्र—खोटे आचरण वाले लोकनिंद्य कुल में जिसके उदय से पैदा हो। जहां आपको भी हिंसा चोरी आदि दुष्ट कर्म करने का समागम सहज मे मिल जाय।

इस कर्म के आश्रव होकर आत्मा के साथ मिलने में नीचे लिखे कारण हैं।

१ परनिन्दा, आत्मप्रशंसा—दूसरे में अवगुण हों वा न हों, परन्तु किसी अपने विषय के मतलब से दश आदमियों में उनकी बुराई करनी और अपने मे गुण हो वा न हों, किसी अपने विषय कषाय के मतलब (धनादि का लोभ) से दश आदमियों के सामने अपनी तारीफ़ करनी।

२ पर-सत-गुणाच्छादन आत्म असत्गुणाच्छादन—दूसरे में गुण होते हुए भी ज़ाहिर न हो, ऐसी चाह व कोशिस

आहारक अंगोपांग, अने तैजस शरीर, तथा कार्मण शरीर, ए वेने अंगोपांग नथी, तेथी पहेलां त्रण शरीरनांज अंगोपांग कह्यां छे. ते (उवंगा के०) उपांगानि, एटले अंग उपांग, तथा अंगोपांगरूप नामकर्म कहेवाय. (आइमसंघयण-संठाणा के०) आदिमसंहननसंस्थाने एटले १६ जेना उदयथी छ संघयणमांनुं पहेलुं वज्रऋषभ-नाराच नामनुं संघयण प्राप्त थाय छे, तेमां वज्र एटले खीली, ऋषभ एटले पाटो, तथा नाराच एटले वे पासा मर्कटबंध, ते उपर पाटो, ते उपरे खीली एवो हाडनो निचय एटले समुदाय होय, ते अस्थिनिचयसंचयणरूप प्रथम संघयण कहेवाय. १७ जेना उदयथी पोते पर्यंकासन करी वेठां छतां समचतुरस्र-चारे बाजु सरखी आकृती थाय, अने पोताना अंगुल प्रमाणवडे एकसो ने आठ अंगुल प्रमाण शरीर नराय, तेने उत्तम

करना, अपने में अवगुण होते हुए अवगुणों के ढकने और न होते गुणों को प्रकट करने की चाह व कोशिस करना।

इसके सिवाय अपनी जाति, कुल, रूप, बल विद्या का घमंड करना, दूसरे की हंसी करना, व देव गुरु धर्म व अपने से बड़ों की विनय, सत्कार नहीं करनी, यह सब नीच गोत्र के आश्रव के कारण हैं।

इसके विरुद्ध कारणों के होने से उच्च गोत्र रूपी कर्मों का आश्रव होता है। जैसे दूसरे के गुणों की विनय व प्रशंसा, अपने में गुण होते हुए भी विनय व प्रशंसा नहीं चाहना, जैसे भस्म के नीचे दबी अग्नि रहती है। इस तरह रह कर अपने बड़प्पन को अपने से प्रकट न करना।

अध्याय बारहवां

८—अन्तराय कर्म।

यह वह कर्म है जिसके उदय आजाने से बनते व सोचे हुए काम में विघ्न व बिगाड़ पड़ जाता है। इसके ५ भेद हैं।

१ दानान्तराय—जिसके उदय से देने की चाहना करे व कोशिस करे परन्तु दे न सके।

२ लाभान्तराय- जिसके उदय से लाभ होना चाहे व कोशिश करे, पर लाभ न हो सके।

३ भोगान्तराय—जिसके उदय से संसार की वस्तुओं को भोगने की चाहना करे व कोशिश करे, पर वह भोगने में न आवें।

गंध; २० आम्ल, मधुर अने कषायेलरूप शुभ रस; तथा २१ लघु, मृदु, उष्म अने स्निग्धरूप शुभ स्पर्श. ए चार पदार्थ पुण्यप्रकृतिने अर्थे प्रशस्त जाणवा. एउनी प्राप्ति थाय छे, ते (वण-चउक्क के०) वर्णचतुष्कं, एटले वर्णचतुष्क कहेवाय.

२२ जेना उदयथी मध्यम वजनदार शरीरनी प्राप्ति थाय, एटले लोहनी पेठे अति भारी पण नहीं, अने आकमाना कपासनी पेठे अति हलकुं पण नहीं, किंतु मध्यम परिणामी होय, ते (अगुरुलहु के०) अगुरु लघु, एटले अगुरुलघु नामकर्म कहेवाय.

२३ जेना उदयथी बीजा बलवानने अति दुःसहनीय छतां पोते गमे तेवा बलीयाने जीतवाने समर्थ थाय छे, एवा बलनी प्राप्ति थाय छे, ते (पराघा के०) पराघातः, एटले पराघात नामकर्म कहेवाय.

४ उपभोगान्तराय—जिसके उदय से संसार की उपभोग करने योग्य वस्तुओं को काम में लाने की चाहना व कोशिश करे, पर काम में न ला सके।

[भोग—उन वस्तुओं को कहते हैं जो एक बार काम में आवे फिर किसी काम की न रहें। जैसे भोजन, सुगन्ध आदि। उपभोग—उन वस्तुओं को कहते हैं जो बार बार काम में आवें। जैसे मकान कपड़े आदि]

५ वीर्यांतराय- जिसके उदय से किसी काम के करने का उत्साह करे पर वह उत्साह काम न कर सके।

इस अंतराय कर्म के आने और आत्मा के साथ बंधने में कारण विघ्न का डालना है। कोई दान देता हो व देने की इच्छा करता हो उसको किसी न किसी प्रकार दान देने से रोकने की चाह व कोशिश करना, कोई को लाभ होता हो उसको लाभ न होने देने की चाह व कोशिश करना, दूसरे के भोगने व उपभोगने योग्य वस्तुओं को बिगाड़ने की चाह व कोशिश करना दूसरे की शक्ति व उत्साह को बिगाड़ने की चाह व कोशिश करना यह सब अंतराय कर्म के आश्रव के कारण हैं। इसके सिवाय और जितने ऐसे ऐसे काम हैं जिनके करने से हमारा व हमारे आधीन स्त्री व बालकों का विगाड़ होता है, ये सब अंतराय कर्म के आश्रव के कारण हैं। जैसे लड़के व लड़कियों को विद्या न पढ़ाने से उनके ज्ञान प्रकट होने मे विघ्न पड़ने से, तथा बालकों की शादी छोटी उम्र मे कर देने से जिससे उनका मन विद्या लाभ करते करते रुक जाय, व अपने अधीन नौकर चाकर व

गइ के०) शुभखगतिः, एटले शुभ विहायोगति नामकर्म कहेवाय.

२७ जेना उदयथी पोतानां अंगना सर्व अवयवो योग्य स्थलने विषे गोठववानी शक्ति सूत्रधारनी पेठे प्राप्त थाय छे, ते (निमिण के०) निर्माणं, एटले निर्माण नामकर्म कहेवाय.

२९–३७ जेना उदयथी त्रस दशक एटले त्रसादि दश प्रकृति जे आगल कहेवाशे, तेनी प्राप्ति थाय छे, ते (तसदस के०) त्रसदशकं, एटले त्रसदशक नामकर्म कहेवाय. तेनुं विवरण आगलनी गाथामां कहेवाशे.

(सुरनरतिरिआउ के०) सुरनरतिर्यगायुः, एटले ३९ जेना उदयथी देवताना आयुष्यनी प्राप्ति थाय छे, ते सुरायुष्य कहेवाय.

४० जेना उदयथी मनुष्यना आयुष्यनी प्राप्ति थाय छे, ते नरायुष्य कहेवाय.

प्रजा को धर्म सेवन में विघ्न डालने से अंतराय कर्म का आश्रव होता है। इसी प्रकार विद्यालय, औषधालय भोजनालय, आदि धर्म कार्यों में उन्नति न चाहने से तथा विगाड़ के भाव रखने से तीव्र अंतराय कर्म का आश्रव होता है। जो धन यात्री लोग तीर्थयात्रा में तीर्थों पर तीर्थ के सुप्रबन्ध व उचित धर्म कार्य के लिये देते हैं उस धन से सुप्रबन्ध व उचित धर्म काय के लिये देते हैं उस धनसे सुप्रबन्ध न कर व उचित धर्म कार्य को न कर व्यर्थ डाले रखना व अपने काम में ले आना तीव्र अंतराय कर्म का आश्रव करने वाला है।

इस तरह यह आठ प्रकार का कर्म हम संसारी जीव अपने ही भावों के द्वारा बांधते हैं और आपही उनके उदय आने पर उनका फल भोगते हैं जैसे मदिरा हम आपही पीते हैं और आपही दुःख भुगतते हैं तथा बदहजमी करने वाला भोजन हम आपही खाते हैं और आपही अनेक रोगों को अपने में पैदा कर लेते हैं।

इस तरह ५+९+२+२८+४+९३+२+५=१४८ प्रकृति मुख्य करके ८ कर्मों की हैं। पर इनके भेद यदि सूक्ष्म दृष्टि से किये जावें तो और बेगिनती हो सकते हैं।

इस प्रकार यह कर्म सर्व पौद्गलिक हैं जड़ हैं, हमारे ही किये हुए हैं, अजीव हैं।

अध्याय तेरहवां

अन्य ४ द्रव्य

धर्म द्रव्य यह है—जो जीव पुद्गल को चलने में इस तरह

थिरं–स्थिर.
सुभं–शुभ.
च–अने.
सुभगं–सौभाग्य.
च–अने.
सुस्सर–सुस्वर.
आइज्ज–आदेय.
जसं–जश, यश.
तसाइ–त्रसादि.
दसगं–दश प्रकृति.
इमं–आ, एं.
होइ–होय छे, छे.

विस्तारार्थः–(तसवादरपज्जत्त के०) त्रसवादर पर्याप्तं, एटले १ जे कर्मना उदयथीजीवने त्रसपणुं (त्रास पामी एक स्थानथी वीजे स्थाने जवानी शक्ति) प्राप्त थाय ते, २ जेना उदयथी वादर एटले स्थूल शरीरनी प्राप्ति थाय, पण जे दृष्टिए करी देखाय नहीं, एवां सूक्ष्म शरीरने न पमाय ते वादर नामकर्म कहेवाय.

३ जेना उदयथी आप आपणी पर्याप्ति पूरी करे, त्यारपछी मरे, ते पर्याप्ति वे प्रकारे छे, एक लब्धि, वीजी करण, ते पर्याप्त नामकर्म कहेवाय.

मदद करै जैसे मछली को चलने के लिये पानी की जरूरत है, पानी मछली को प्रेरणा नही करता है कि चलो किन्तु बिना पानी के नही चल सक्ती इसी प्रकार धर्म द्रव्य प्रेरणा करके जीव और पुद्गल को नहीं चलाता है किन्तु उदासीन सहायक होता है।

अधर्मद्रव्य—धर्म द्रव्य से उलटा काम करता है अर्थात् जीव पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है; जैसे रास्ते में जाते हुये मुसाफिर को वृक्ष की छाया सहायक होती है।

आकाशद्रव्य—जोकि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल इन पांच द्रव्यों को स्थान दे।

कालद्रव्य—वह द्रव्य है जो अन्य द्रव्यों को पर्याय व दशा पलटने मे कारण रूप हो। यह दो प्रकार का है १ व्यवहार-काल—समय घड़ी घंटा आदि। निश्चयकाल-आकाश के एक एक प्रदेश मे काल का एक एक अणु जैसे रत्नो की राशि। इस द्रव्य का एक अणु दूसरे अणु मे एक मे एक होकर नही मिलता। इसी से इस द्रव्य को अकाय कहते हैं।

प्रदेश उतने स्थान को कहते हैं जितनी जगह को पुद्गल का छोटा से छोटा अविभागी (जिसका फिर भाग न हो सके) परमाणु रोकता है। इस १प्रदेश वाले आकाश में धर्म द्रव्य और अधर्म-द्रव्य का एक प्रदेश और काल की एक अणु और पुद्गल के बहुत से परमाणु आ सक्ते है, इसी प्रकार जीव के शरीर मे छोटे से छोटे में बहुत से अन्य शरीर धारी जीव आ सकते है। इसी से जीव पुद्गल अनन्त हैं किन्तु धर्म, अधर्म, आकाश, काल एक एक द्रव्य है—जैसे १ दीपक

९ जेना उदयथी लोकने विषे माननीय वचन थाय, ते आदेय नामकर्म कहेवाय.

१० जेना उदयथी लोकने विषे यशःकीर्त्ति थाय ते यशोनामकर्म कहेवाय.

एवी रीते (तसाइ दसगं के०) त्रसादि दशकं एटले त्रस आदि दश प्रकृतिनुं दशक (इसं के०) इदं, एटले ए पुण्यना भेदमां (होइ के०) भव-ति, एटले छे. ते पूर्वोक्त बत्रीशमां भेळीए, ते वारे बेंतालीश थाय. ए पुण्यतत्त्वना बेंतालीश भेद कह्या. आ गाथामां वे चकार जे छे, ते पादपूरणार्थे छे ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीपुण्यतत्त्वविचारः समाप्तः ॥ ३ ॥

हवे पापतत्त्वनुं वर्णन करतां अढार प्रकारे पाप बंधाय, अने व्याशी प्रकारे भोगवाय ते कहे छे—

एक कमरे में जलाने से रोशनी के परमाणु कमरे भर में फैल जाते हैं किन्तु यदि दश दीपक उतनेही स्थान में जलाये जाय तो उतनेही स्थान में आ सकते हैं। यह परमाणु पुद्गल के स्थूल सूक्ष्म हैं जब इनके अणुओं में यह शक्ति है तो सूक्ष्म, व सूक्ष्म सूक्ष्म परमाणुओं में व जीव द्रव्य में यह शक्ति क्यों नहीं हो सकती है * इसी लिये एक जीव के एक प्रदेश भर स्थान में अनन्ते कार्माण पुद्गल के परमाणु आ सक्ते हैं तथा एक निगोदिए के सब से छोटे शरीर में अनन्ते शरीरी जीव समा सकते हैं। इन द्रव्यों को जहां पाया जाय उनको ही लोक (दुनिया) कहते हैं। यह सर्व लोक में हैं तथा इन द्रव्यों ही की पर्याय पलटन से नाना प्रकार के मनुष्य, जन्तु, वृक्ष, पहाड़, धातु औषधि आदि पाई जाती हैं इन छहों में सब से ज्यादा काम पुद्गल और जीव का है बाकी ४ द्रव्य केवल सहायता मात्र हैं।

---

*देखिए श्री पार्श्वपुराण जी को।

शिष्यप्रश्न—धर्म अधर्म काल अरु चेतन चारों दरब अरूपी माण, तातैं एक आकाश देशमें प्रभु सब के प्रदेश समाण मूरतवत अनंते पुद्गल ते उस नभ में क्योंकर माण। यह संशय समझाय कहो गुरुदास होय अब पूछन आये।

गुरुउत्तर सोरठा—यह प्रदीप परकाश यथा एक मंदिर विषै। लह सहज अवकाश, बाधा कछु उपजे नहीं। त्योंही नभ प्रदेश में, पुदगल खंध अनेक, निराबाध निवसे सही, त्यों अनन्त त्यां एक।

हवे पाप बांधवाना अढार प्रकार कहे छे—प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति अरति, परपरिवाद, मायामोसो, तथा मिथ्यात्वशल्य. ए अढार प्रकारे पाप बंधाय छे, अने व्याशी प्रकारे भोगवाय छे, ते व्याशी प्रकार कहे छे—

(नाणंतरायदसगं के०) ज्ञानांतरायदशकं, एटले १ जेना उदयथी पांच इंद्रिय, तथा मनोद्वाराए जे नियत वस्तुनुं ज्ञान थाय छे, एवा प्रथम अक्षरोपलब्धिरूप मतिज्ञाननुं जे आछादन थाय, ते मतिज्ञानावरणीय पापकर्म कहेवाय.

२ जेना उदयथी मन अने इंद्रियोथी थतुं अर्थोपलब्धिरूप ज्ञान अथवा द्वादशांगीरूप शास्त्रानुसारे जे ज्ञान थाय छे, एवा श्रुतज्ञाननुं आछादन थाय, ते श्रुतज्ञानावरणीय पापकर्म कहेवाय.

इस प्रकार अजीव पांच प्रकार के होते हैं जिन में चेतना न होने पर भी अपने अपने स्वभाव रूप कार्य करने की शक्ति होती है (इनका विशेष वर्णन जानने के लिये हमें जैन शास्त्रों के तो द्रव्यानुयोग के ग्रंथ और यूरुप के विद्वानों द्वारा प्रकाशित पदार्थ विद्या के ग्रंथ पढ़ने चाहिये) ।

अध्याय चौदहवां

आश्रव तत्व ।

पुद्गल के कार्माण परमाणुओं का हमारी आत्मा के प्रदेशों के पास पास आने को आश्रव कहते हैं। कर्मों के आने के ३ मार्ग हैं। मन, वचन, काय, इनको योग कहते हैं। जब यह हिलते हैं कार्माण परमाणुओं का आना होता है यह दो प्रकार का होता है एक भाव आश्रव दूसरा द्रव्य आश्रव ।

मिथ्यात्, अविरत (पांच इन्द्रिय मन के न रोकने व अदया भाव) प्रमाद (आलस्य) कषाय (क्रोध मान माया लोभ) आदि के भाव अथवा दानादि शुभ कर्म करने के भाव इत्यादि भाव जिनसे कि अशुभ व शुभ कर्म आते हैं उनके भाव आश्रव कहते हैं। जो कर्मरूपी पुद्गल आते हैं उनको द्रव्याश्रव कहते हैं। कर्म आठ प्रकार के हैं उनके आने के कौन कौन से भाव हैं इनका वर्णन 'अजीव तत्व' में हो चुका है ॥

कर्म जो आकर आत्मा के प्रदेशों मे बंध जाते हैं उनको सांपरायिक आश्रव कहते है और जो आवें तो सही पर बन्धे नहीं उनको ईर्यापथ आश्रव कहते हैं। जब अपने परिणाम में राग-

६ जेना उदयथी पोताना घरमां देवा योग्य वस्तु छतां तथा दाननुं फल जाणतां छतां पण आपी शकाय नहीं, ते दानांतराय पापकर्म कहेवाय.

७ जेना उदयथी दातार छतां, दातारना घरमां वस्तु छतां, मागनार डाह्यो छतां पण जे याचित वस्तुनी प्राप्ति न थाय, ते लाभांतराय पापकर्म कहेवाय.

८-९ जेना उदयथी पोते यौवन छतां, सुरूप छतां, तथा भोगोपभोग्य वस्तुनी प्राप्ति थइ छतां पण ते भोगवाइ न शकाय, ते भोगांतराय तथा उपभोगांतराय, ए बे पापकर्म कहेवाय, ८ पुष्पादि पदार्थ जे एक वार भोगवाय, छे तेने भोग कहे छे, अने ९ वस्त्रादिक पदार्थ जे वारंवार भोगवाय छे, तेने उपभोग कहे छे.

द्वेष, कषाय आदि होंगे तब अवश्य सांपरायिक आश्रव होगा। किन्तु जब यह न होंगे और वचन व काय हिलने से कर्म आवेंगे जैसे कि केवल ज्ञानियों के आते हैं तो उनके आगमन ईर्यापथ कहते हैं। कर्म किन किन भावों से आता है इसका विशेष वर्णन गोमट्टसार के जीव काण्ड तथा कर्मकाण्ड से विशेष मालुम हो सकता है।

अध्याय १५वां

बंध तत्व।

कर्मों का बांधना ही वास्तव में हमारे लिये संसार की अवस्था में रहने का कारण है।

इसमें मुख्य कारण राग और द्वेष हैं।

जिस समय हम अपने पहले के बांधे हुए कर्मों का फल पाते हैं उस समय यदि हमारी आत्मा अपने परिणाम चला कर उस फल को अच्छा व बुरा समझेगा उसी समय यह आत्मा कार्माण परमाणुओं को खींच लगा जो अगाड़ी फिर कर्म उदय में आवेंगे—किन्तु यदि आत्मा उस फल में अपना परिणाम राग व द्वेष रूप न करके समता रक्खे, तब यह कर्म अपना फल देकर चले जायगे और यह आत्मा कर्मों का बंधन न करेगा—जैसे किसी मनुष्य का पुत्र मर गया तब यदि उसका आत्मा शोकित होगा तब जितने तीव्र व मन्द भाव होंगे उसी भांति उसी प्रकृति के कार्माण परमाणुओं से बंधन होगा। किन्तु यदि शोकित न होकर वे संसार की

१३ जेना उदयथी सामान्यपणे जे रूपी द्रव्यनुं मर्यादापणे ग्रहण थाय छे; एवा अवधिदर्शननुं जे आछादन थाय, ते अवधिदर्शनावरणीय पापकर्म कहेवाय.

१४ जेना उदयथी समस्त वस्तुनुं जे सामान्यपणे देखवुं थाय छे, एवा केवलदर्शननुं जे आछादन थाय, ते केवलदर्शनावरणीय पापकर्म.

१५ जेना उदयथी निद्रावस्था थइ गया पछी सुखपूर्वक एक शब्दमात्रथी जाग्रदवस्थानी प्राप्ति थाय, ते निद्रारूप पापकर्म कहेवाय.

१६ जेना उदयथी निद्रावस्था थइ गया पछी दुःखपूर्वक जाग्रदवस्थानी प्राप्ति थाय, ते निद्रानिद्रागाढ निद्रारूप पापकर्म कहेवाय.

१७ जेना उदयथी बेठां बेठां तथा उभां उभां निद्रा आव्या करे, ते प्रचलारूप पापकर्म कहेवाय.

क्षणभंगुरता देखता हुआ वह आत्मा समपरिमाण रक्खेगा अर्थात् किसी प्रकार की हलन चलन इस वार्ता के होने से उसके परिणामों में न होगी तौ वह आत्मा कर्मों का बंधन नही करेगा।

१४८ प्रकार के जो मुख्य भेद आठ कर्मों के दिखलाए गए हैं इसी बंध के द्वारा होते है--जिस जिस प्रकार का कर्म यह बांधता है उस उस प्रकार का रस उदय होने पर पाता है। इस बात के अनेक दृष्टान्त जैन शास्त्रों में मिलेंगे। श्री रामचन्द्र के भाई भरत जी के पूर्वभव के चरित्र मे एक मुनि का वर्णन है कि उसने एक ऐसे उद्यान में विहार किया जहां कि चारण रिद्धिधारी आचार्य्य ने चौमासा किया था और जिस समय यह मुनि वहां पहुंचा वह विहार कर गए थे। उस उद्यान के निकटवर्ती नगर के लोग उसी दिन आचार्य के दर्शन करने के लिये आए और इन्ही को आचार्य्य मान नमस्कार किया व धर्म सुना। तब इस मुनि ने उन लोगों को यह न बतलाया कि मैं वह आचार्य नही हूं जिसका नाम आप लेते हो। इतनी माया रखने के कारण उसी मुनि को तिर्यञ्च गति मे तिलोकमण्डन हाथी की पर्याय में आना पड़ा।

जगत के जीवों के तरह तरह के चरित्र दिखलाई पड़ते हैं कारण यही कि उनके पहले के बांधे हुए कर्मों का उदय है।

---

२१ जेना उदयथी दुःखनो अनुभव थाय छे, ते अशातावेदनीय पापकर्म.

२२ जेना उदयथी वीतरागनां वचननी विपरीत सद्दहणा थाय, ते मिथ्यात्वमोहनीय पापकर्म कहेवाय.

(थावरदसनरयतिगं के०) स्थावरदशकनरकत्रिकं, एटले २३–३२ जेना उदयथी स्थावरदशकनी प्राप्ति थाय छे, ते स्थावरदशक नामनुं पापकर्म, ते आगल कहेवाशे, माटे अहीं नाम मात्र दर्शाव्युं छे.

३३–३५ जेना उदयथी नरकनी गति, नरकनी आनुपूर्वी (एटले नरके जता जीवने उत्पत्ति क्षेत्रे वळवुं थाय ते), तथा नरकनुं आउखुं प्राप्त थाय छे, ते नरकत्रिक पापकर्म कहेवाय.

(कसायपणवीस के०) कषायपंचविंशतिः, एटले पचीश कषायरूप पापकर्मना पचीश प्रकार

अध्याय १६ वां

संवर

जिन द्वारों से कार्माण परमाणुओं का आगमन आत्मा के प्रदेशों के पास होता है उन द्वारों का रोकना सो संवर है—यह भी दो प्रकार का होता है—

१—भाव संवर— जिन भावों के करने से आत्मा कर्मों को खींचे उन भावों को रोकना सो भाव संवर है।

मिथ्यात रूपी भावों के रोकने के लिये सम्यग्दर्शन होने की, अविरत रूप भावों को बन्द करने के लिये देशव्रत की तथा महाव्रत की, प्रमाद के नाश करने को निरालम्बी ध्यानी मुनि होने की, क्रोध, मान, माया, लोभ के बन्द करने के लिये वीतराग भावों की, मन वचन काय योगों को रोकने के लिये निश्चल निज रूप में थिरता होने की आवश्यकता है—

इसी संवर के पाने के लिये बुद्धिमानों ने यह हेतु बतलाये हैं।

(१) गुप्ति—मन, वचन, काय को वश में रखना।

(२) समिति—यह पांच तरह की होती है।

(क) देख कर चलना।
(ख) समझ कर हित मित वचन बोलना।
(ग) शुद्ध निर्दोष भोजन लेना।
(घ) देखकर वस्तुओं को रखना व उठाना।

देशविरतिपणुं आववा दीए नहीं, ने अंते तिर्यंचनी गतिनी प्राप्ति करावे. ए क्रोध सुकेला तलावनी रेखा जेवो छे, मान हाडकाना थांजला जेवो छे, माया मंढाना शिंगडा जेवी छे, तथा लोज कर्दमना रंग जेवो छे.

४८–४७ जेना उदयथी सर्वविरतिरूप प्रत्याख्याननुं आछादन थाय, पण लेशमात्र प्रत्याख्यान (त्यागवृत्ति होय, तेने प्रत्याख्यानीय पापकर्म कहीए. एना क्रोध, मान, माया अने लोज ए च्यार जेद छे. ए चार मास सुधी कायम रहे, सर्वविरतिरूप चारित्रनो घात करे, तथा अंते मनुष्यनी गतिनी प्राप्ति करावे छे. ए क्रोध, रेतीनी रेखा जेवो छे, मान काष्टना थांजला जेवो छे. माया वृषजना मूत्रनी रेखा जेवी छे, अने लोज काजलना रंग जेवो छे.

(ङ) देख कर मल मूत्र आदि डालना।

(३) धर्म—निम्न लिखित दश लक्षण वाले धर्म पर चलना—

(क) उत्तम क्षमा—क्रोध को वश में करके निर्बल का भी अपराध विचार पूर्वक क्षमा करना।

(ख) मार्दव—घमंड किसी बात का न करके अपने भाव यह समझ कर कोमल रखने कि आत्मा तो सबही की निश्चय से एक रूप है छोटा बड़ापन केवल शरीर सम्बन्धी है। सो इसके छूटने का कोई समय नियत नहीं, यह शरीर नाश होने ही वाला है। इस से संसार की चीज़ों को लेकर मेरा मद करना व्यर्थ तथा हानिकारक है।

(ग) आर्जव—किसी प्रकार की मायाचारी न करके परिणाम सरल रखना।

(घ) सत्य—स्वपरहितकारी सच्चे वचन कहना।

(ङ) सौच—मन वचन कार्य की पवित्रता (सफाई)

(च) सयम—इन्द्रियों को वश में रखना। जीव दया पालनी।

(छ) तप–मन को एक ठिकाने करके आत्मा की शक्ति प्रगट करने में यत्न करना।

(ज) त्याग—दान देना व परिग्रह न रखना।

(झ) आकिंचन—परिग्रह की ममता बिलकुल न होना।

(ञ) ब्रह्मचर्य्य—स्त्री मात्र से चित्त हटाकर अपना ब्रह्म जो आत्मा उसके बीच मे उसको स्थिर करना।

५२-५७ जेना उदयथी एक वस्तु निमित्ते तथा बीजी परनिमित्ते, ए बे प्रकारथी हास्य, रति, अरति, शोक, भय तथा दुगंछानी उत्पत्ति थाय, तेने हास्यषट्करूप पापकर्म कहीए. एवं सत्तावन्न.

५८ जेना उदयथी स्त्री भोगववानी इछा थाय, तेने पुरुषवेदरूप पापकर्म कहीए; एने तृणना अग्निनी उपमा छे.

५९ जेना उदयथी पुरुष भोगववानी इछा थाय, तेने स्त्रीवेदरूप पापकर्म कहीए; एने धुणीना अग्निनी उपमा छे.

६० जेना उदयथी स्त्री तथा पुरुष ए बन्नेने भोगववानी अभिलाषा थाय, तेने नपुंसकवेद रूप पापकर्म कहीए. एने नगरदाहनी उपमा छे.

६१-६२ जेना उदयथी तिर्यंचनी गति तथा तिर्यंचनी आनुपूर्वीनी प्राप्ति थाय, ते (तिरियदुगं क०) तिर्यग्द्विकं, एटले तिर्यंचद्विक नामकर्म कहेवाय ॥ १८ ॥

(५) नीचे लिखे अनुसार १२ **भावनाओं** को बार बार **भावना** अर्थात् याद करना ॥

(१) अनित्य—इस जगत में सब चीजों की दशाए बदलने वाली हैं कोई एक दशा में स्थिर नहीं रहता इससे मोह करना निरर्थक है।

(२) अशरण—जगत में जीव को अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने से रोकने के लिए किसी की भी ताकत नहीं है इसलिए झूठा शरणा का ध्यान छोड़ अपने ही आत्मा को अपना शरण मानना चाहिये। अथवा पंच परमेष्ठी का शरण अनुभव करना चाहिये।

(३) संसार—जिन चार गति रूपी संसार की अनन्त योनियों में जीव का भ्रमण उसी के बांधे कर्मों के द्वारा हुआ करता है उनमें कहीं रंचमात्र भी आनन्द नहीं है। देव, पशु, मनुष्य, नारकी मानसिक तथा शारीरिक दुःख से दुःखी हैं इस संसार में प्रीति करना उचित नहीं।

(४) एकत्व—अपने बांधे हुए कर्मों का फल इस जीव को अकेला ही भुगतना पड़ता है।

(५) अन्यत्व—अपने से जितने दूसरे हैं सब पर हैं। जगत में सम्बन्ध मतलब का है।

(६) अशुचि—यह शरीर किसी दशा में भी पवित्र नहीं है और न स्नान चन्दनादि से किसी प्रकार शुद्धि हो सकती है इस लिये शरीर को अपना दास बना कर रखना। आप दास न हो जाना।

६४ जेना उदयथी शंख प्रमुख जीवोनी जातिना शरीरनी प्राप्ति थाय छे, ते त्रेंद्रिय जाति रूप पापकर्म कहेवाय.

६५ जेना उदयथी जू, माकरुादिक जातिना शरीरनी प्राप्तिथाय छे, ते तेंद्रिय जातिरूप पापकर्म कहेवाय.

६६ जेना उदयथी वृश्चिकादिक जातिना शरीरनी प्राप्ति थाय छे, ते चतुरिंद्रिय जातिरूप पापकर्म कहेवाय.

६७ जेना उदयथी उंट अथवा गधेडानी पेठे नरसी गतिनी प्राप्ति थाय छे, ते (कुखगइ के०) कुखगतिः, एटले अशुभ विहायोगति नामकर्म कहेवाय.

६८ जेना उदयथी पोताना जीभ, दांतहरस, रसोली प्रमुख अवयवे करी पोतेज हणाय छे, ते (उवघाय के०) उपघातः, एटले उपघात नामकर्म कहेवाय.

(ङ) देख कर मल मूत्र आदि डालना।

(३) धर्म—निम्न लिखित दश लक्षण वाले धर्म पर चलना—

(क) उत्तम क्षमा—क्रोध को वश में करके निर्बल का भी अपराध विचार पूर्वक क्षमा करना।

(ख) मार्दव—घमंड किसी बात का न करके अपने भाव यह समझ कर कोमल रखने कि आत्मा तो सबही की निश्चय से एक रूप है छोटा बड़ापन केवल शरीर सम्बन्धी है। सो इसके छूटने का कोई समय नियत नहीं, यह शरीर नाश होने ही वाला है। इस से संसार की चीज़ों को लेकर मेरा मद करना व्यर्थ तथा हानिकारक है।

(ग) आर्जव—किसी प्रकार की मायाचारी न करके परिणाम सरल रखना।

(घ) सत्य—स्वपरहितकारी सच्चे वचन कहना।

(ङ) सौच—मन बचन कार्य की पवित्रता (सफाई)

(च) संयम—इन्द्रियों को वश मे रखना। जीव दया पालनी।

(छ) तप–मन को एक ठिकाने करके आत्मा की शक्ति प्रगट करने में यत्न करना।

(ज) त्याग—दान देना व परिग्रह न रखना।

(झ) आकिंचन—परिग्रह की ममता बिलकुल न होना।

(ञ) ब्रह्मचर्य्य—स्त्री मात्र से चित्त हटाकर अपना ब्रह्म जो आत्मा उसके बीच में उसको स्थिर करना।

नाराच कहे छे. जेने एक पासे मर्कटबंध होय, तेने अर्धनाराच कहे छे, ज्यां मांहोमांहे हाड-कांने एक खीलीनो बंध होय, तेने कीलिका कहे छे, अने जे खीली विना मांहोमांहे उख-लमां रहेला मुसलनी पेठे अमस्तां अडकी रह्यां होय, तेने छेवठो कहे छे. ए पांच संघयणनी जेणे करी प्राप्ति थाय छे; ते अप्रथम संघयण-रूप नामकर्म कहेवाय.

७८–८२ जेना उदयथी छ संस्थानमांना पहेला संस्थान विना बीजां पांच संस्थाननी प्राप्ति थाय छे, तेमां जे वट वृक्षनी पेठे नाभिनी उपर सुल-क्षण युक्त तथा नाभिनी नीचे निर्लक्षण युक्त होय, तेने न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहे छे; जे नाभिनी नीचेनुं अंग सारुं अने नाभिनी उ-परनुं अंग नरसुं होय, तेने सादि संस्थान कहे ; जे उदर प्रमुख लक्षणोपेत अने हाथ, पग,

(५) नीचे लिखे अनुसार १२ भावनाओं को वार वार भावना अर्थात् याद करना ॥

(१) अनित्य—इस जगत में सब चीजों की दशाएं बदलने वाली हैं कोई एक दशा में स्थिर नहीं रहता इससे मोह करना निरर्थक है।

(२) अशरण—जगत में जीव को अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने से रोकने के लिए किसी की भी ताकत नहीं है इसलिए झूठा शरणा का ध्यान छोड़ अपने ही आत्मा को अपना शरण मानना चाहिये। अथवा पंच परमेष्टी का शरण अनुभव करना चाहिये।

(३) संसार—जिन चार गति रूपी संसार की अनेक योनियों में जीव का भ्रमण उसी के बांधे कर्मों के द्वारा हुआ करता है उनमें कहीं रंचमात्र भी आनन्द नहीं है। देव, पशु, मनुष्य, सबही मानसिक तथा शारीरिक दुःख से दुःखी हैं ऐसे संसार में प्रीति करना उचित नहीं।

(४) एकत्व—अपने बांधे हुए कर्मों का फल इस जीव को अकेलाही भुगतना पड़ता है।

(५) अन्यत्व—अपने से जितने दूसरे हैं सब पर हैं। जगत में सम्बन्ध मतलब का है।

(६) अशुचि—यह शरीर किसी दशा में भी पवित्र नहीं है और न स्नान चन्दनादि से किसी प्रकार शुद्धि हो सकता है इस लिये शरीर को अपना दास बना कर रखना। आप दास न हो जाना।

गाथा २० मीना छूटा शब्दना अर्थ.

थावर–स्थावर.	दुभगाणि–दुर्भाग्य.
सुहुम–सूक्ष्म.	दुस्सर–दुःस्वर.
अपज्ज– अपर्याप्त.	अणइज्ज–अनादेय.
साहारणं–साधारण.	अजसं–अयश.
अथिरं–अस्थिर.	थावरदसगं–स्थावरदशक.
असुभ–अशुभ.	विवज्जत्थं–विपरीतार्थ.

विस्तारार्थः–(थावरसुहुमअपज्जं के०) स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तं, एटले जेना उदयथी स्थावरपणुं प्राप्त थाय, तेथी जो तापादिके पीडाय, तोपण त्यांथी खसी शकाय नहीं, ते प्रथम स्थावर नामकर्म कहेवाय. जेना उदये दृष्टिना अगोचर एवा सर्व लोकमां व्यापी रहेला सूक्ष्मपणानी प्राप्ति थाय, ते पण पृथिव्यादिक पांचज जाणवा, ते बीजुं सूक्ष्म नामकर्म कहेवाय. जेना उदयथी स्वयोग्य पर्याप्ति पूरी कर्या विनाज मरण पामे, ते त्रीजुं अपर्याप्त नामकर्म कहेवाय.

(७) आश्रव—कर्मों के आने के कारणों का विचार करना।

(८) संवर—कर्मों को आने से रोकने के लिये उपाय विचारना।

(९) निर्जरा—कर्मों को नाश करने का यत्न विचारना।

(१०) लोक—छः द्रव्यों से भरे लोक का स्वरूप विचार करना।

(११) बोध दुर्लभ—जगत में आत्मज्ञान का पाना बड़ा कठिन है—यदि ऐसा ज्ञान हो जाय फिर अपना समय व्यर्थ न खोना।

(१२) धर्म—जीव दया जिसमें प्रधान है वही धर्म है—यह धर्म आत्मा ही का स्वभाव है सो किसी प्रकार भी त्यागने योग्य नहीं है।

(५) परीसहों को सम परिणामों से सहना—

ये परीसह २२ हैं—१ क्षुधा (भूख) २ तृषा (प्यास) ३ शीत (जाड़ा) ४ (गरमी) ५ दंशमशक (डंस मच्छरकी) ६ नग्न (नंगे उष्ण रहने की) ७ अरति (नसुहाने लायक चीजों के सम्बन्ध की) ८ स्त्री (स्त्री की ओर परिणाम हो जाने की) ९ चर्या (चलने की) १० निषद्या (बैठने की) ११ शैया (सोने की) १२ आक्रोश—(गाली सुनने की) १३ वध (मारने की) १४ याचना (मांगने की) १५ अलाभ भोजनादि न मिलना की) १६ रोग १७ तृणस्पर्श (कटीले तिनके आदि के छूने की १८ मल (शरीर के मलादिक की)

जेना उदयथी लोकने विषे तेनुं बोलवुं कोइ मान्य करे नहीं, ते नवमुं अनादेय नामकर्म कहेवाय. जेना उदयथी लोकमां अपकीर्त्ति थाय, पण कोइ यश बोले नहीं, ते दशमुं अयश नामकर्म कहेवाय.

एवी रीते आ कह्युं जे (थावरदसगं के०) स्थावरदशकं, एटले स्थावरदशक ते पुण्यतत्त्वमां कहेला त्रस दशकथी (विवज्जत्थं के०) विपर्ययार्थं, एटले विपरीतार्थ जाणी लेवुं. ॥ २० ॥

॥ इति पापतत्त्वविचारः समाप्तः ॥

हवे आश्रवतत्त्व बेंतालीश प्रकारे कहे छे—

इंदिअ-कसाय-अव्वय,-जोगा पंच चउ
पंच तिन्नि कमा ॥ किरिआउ पणवीसं,
[1]इमा उ ताउ अणुक्कमसो ॥ २१ ॥

---

१ कोइ ठेकाणे "इमाउ ताओ" छे, त्यां इमाउ एटले आ, अने ताओ एटले ते, ए मुजब अर्थ करवो.

१९ सत्कार पुरस्कार (आदर न होने की) २० अप्रज्ञा (बुद्धि न होने की) २१ अज्ञान (ज्ञान का कर्म की) २२ अदर्शन (श्रद्धान बिगडने के कारण मिलने की)

(६) चारित्र सामायाक आदि करके व महाव्रत आदि पाल के अपने परिणामों को अपने रूप में चलाना ।

इस तरह संवर करने के लिये मुख्य करके ६ कारण हैं । हमारे लिये हर समय उचित है कि हम इन कारणों को अपने नेत्र के सन्मुख रक्खें—ऐसा करने से न तो हमारे कर्मों का आश्रव होगा और न हम इस जगत में कोई प्रकार किसी को हानि कारक होंगे—सभ्यता (Gentlemanliness) के प्राप्त करने के लिये हमें संवर धारण करना चाहिये ।

अध्याय १७ वां

निर्जरा ।

बंधे कर्मों का दूर होना सो निर्जरा है । यह निर्जरा दो प्रकार से होता है-१ सविपाक निर्जरा—जो कि अपने आप हर समय हुआ करता है जब कर्म अपना रस दे चुकते हैं तब झड़ जाते हैं १ अविपाक निर्जरा जो कि यत्न करके करनी होती है ।

यह निर्जरा तप द्वारा होती है । तप का अर्थ तपाने के हैं जैसे मैल से मिला सोना अग्नि में डालने से शुद्ध हो जाता है वैसेही कर्मों से मिली आत्मा को तपाने से इस के कर्ममल अलग हो जाते हैं ।

चक्षु, नासिका, जिह्वा तथा स्पर्शन, ए पांच इंद्रियो छे, क्रोध, मान, माया, ने लोभ, ए चार कषाय छे, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन अने परिग्रह ए पांच अव्रत छे. मनोयोग, वचनयोग, तथा काययोग ए त्रण योग छे, ए अनुक्रमे सत्तर भेद थया, (उ के०) तु, वली (किरिआउ के०) क्रियाः, एटले पापक्रियाउ (पणवीसं के०) पंचविंशतिः, एटले पचीश छे. (ताउ के०) ताः, एटले ते क्रियाउ (इमा के०) इमाः, एटले आ आगळ कहेवाती एवी (अणु-क्कमसो के०) अनुक्रमशः, एटले अनुक्रमे करी जाणवी. एम सर्व मळी बेंतालीश भेद आश्रव-तत्त्वना जाणवा ॥ २१ ॥

ए आश्रव बे प्रकारे छे. एक द्रव्याश्रव अने बीजो भावाश्रव. जे जीवना शुभाशुभ परिणाम, ते भावाश्रव कहीए, एटले इंद्रियना उपयोगरूप

यह तप १२ प्रकार का होता है–६ बाह्य ६ अंतरङ्ग।

बाहरी तप उसको कहते हैं जिस के ग्रहण करने से अन्दर का तप सिद्ध हो सक्ता है। यह छः प्रकार होता है।

१ अनशन–चार प्रकार का आहार छोड़ कर निर्जलव्रत को एकादि दिन का प्रमाण लेकर करना–इसी को उपवास कहते हैं समय समय पर इस तप के करने से इन्द्रियों का का स्वेच्छाचारीपना मिटता है तथा संसार देह भोगों से राग कम होता जाता है।

२ अवमोदर्य—जितनी भूख हो उससे इतना कम खाना कि जिससे नींद आलस्य न आ जावे तथा रोग न पैदा हो जावै इसके धारण करने से हम अपने से आलस्य को दूर रक्खेंगे।

३ वृत परिसंख्यान--आशा तृष्णा मिटाने के वास्ते यह नियम करना कि आज हम एक व दो व पांच घर तक जांयगे भिक्षा मिलेगी तो लेंगे ज्यादा न जांयगे। तथा मिट्टी के व चांदी के व पीतल के बर्तनों में भोजन मिलेगा तो लेयगे अन्यथा नहीं। अथवा राजा के यहां चने का भोजन मिलेगा तो लेंगे नहीं तो नहीं—इस प्रकार दिल की कमजोरी को टालने के मतलब से अटपटी आखरी का लेना। परन्तु किसी को प्रकाश न करना सो वृतपरिसंख्यान तप है।

४ रस परित्याग—जिह्वा इन्द्री की लंपटता के मिटाने के मतलब से तथा नींद को जीतने की गरज से, तथा स्वाध्याय में चित्त रखने के प्रयोजन से इन छः रसों को समय समय पर छोडते रहना सो रस परित्याग नामा तप है—घी, दूध, दही, मीठा, नोन, तेल, यह छः रस है—

विस्तारार्थ—कायाने अजयणाए प्रवर्त्तावतां जे क्रिया लागे, ते पहेली (काइआ के०) कायिकी क्रिया. ते बे प्रकारे छे, एक मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि अविरतिवंतनी उठवा बेसवा आदि कर्मबंधना हेतुरूप सावद्य क्रिया ते अनुपरत कायिकी क्रिया, अने बीजी अशुभ योगवाळाने इष्ट अनिष्ट विषय प्राप्त थतां रति अरति पामवा रूप इंद्रिय संबंधी तथा अनिंद्रिय ते अशुभ मन संबंधी मोक्ष तरफ दुर्व्यवस्थित प्रमत्तमुनि-नी क्रिया, ते दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया कहेवाय. खडगादिक अधिकरणे करी जे जीवोनुं हनन थाय, अथवा जेनो वडे आत्मा नरकादि गति-नो अधिकारी थाय, ते बीजी (अहिगरणीया के०) अधिकरणीकी क्रिया. तेमां प्रथम बनावी राखेलां खड्गादिकनां अंगने परस्पर जोडी रा-खवां, ते संयोजनाधिकरणिकी, अने शस्त्री

५ विविक्त शय्यासन—जीवों की बाधा से रहित एकान्त स्थान जैसे सूना घर, मठ, गुफा, नदी तट आदि स्थानों में शयन आसन करना जिसमें ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय तथा ध्यान भले प्रकार पालन कर सके।

६ कायक्लेश—देह के सुखिया स्वभाव को मिटाने के लिये तथा दुःख आने पर कायरता होने के बचाव के लिये शरीर को यथाशक्ति कष्ट भी देते रहना—जैसे गरमी में पहाड़ के ऊपर खड़े हो, वर्षा में वृक्ष के तले, तथा शरदी में नदी के किनारे व चोराहे पर खड़े हो, अन्तरंग तप करना।

इन उपर्युक्त ६ बाहरी तपों का अभ्यास करने वाला अंतरंग तपों का भले प्रकार पालन कर सकता है—

अंतरंग के छः तप यह हैं—

१ प्रायश्चित—प्रमाद (आलस्य) के कारण जो कोई दोष बन जावें उसके दूर करने का यत्न करना, गुरु से कह कर दण्डादि लेना।

२ विनय—आदर सत्कार करना—यह ४ प्रकार का होता है।

(क) दर्शन विनय—सम्यक् दर्शन को भले प्रकार धारण करना। तथा सम्यक् दृष्टि धर्मात्मा पुरुषों की उचित विनय करना।

(ख) ज्ञान विनय—ज्ञान को भले प्रकार हासिल करना, सम्यक् ज्ञानियों का यथा योग्य आदर करना, तथा ज्ञान के द्वारा वाले शास्त्रादिकों को अच्छी तरह रखना तथा पढ़ना पढ़ाना।

तथा अजीवारंभिकी, एम बे भेदे जाणवी. दास, दासी, पशु, धन, धान्यादिक नवविध परिग्रह मेलवतां तथा तेनी उपर मोह करतां जे क्रिया लागे ते सातमी (परिग्गहिया के०) परिग्रहिकी क्रिया जीवपारिग्रहिकी तथा अजीवपारिग्रहिकी, एम बे भेदे छे. मायाए करी जे बीजाने ठगवुं, अंतर दुष्ट भाव ने बहारथी शुद्ध देखाडवो, तथा जुठी साक्षी खोटा लेख लखी आपवारूप आत्मभाववंचनमाया तथा परभाववंचनमाया, ए भेदे आठमी (मायावत्तीअ के०) मायाप्रत्ययिकी क्रिया. मूलमां जे (किरिआ के०) क्रिया शब्द छे, ते उक्त प्रकारे सर्व शब्दोने जोडवो. आ गाथा तथा आगलनी बे गाथामां प्राकृत पदोनां संस्कृत पदो प्रगट छे. तेज ग्राह्य छे ॥ २२ ॥

(ग) चारित्र विनय—श्रावक मुनि के करने योग्य आचरण बड़ी प्रीति से करना तथा सम्यक्चारित्र के पालने वालों का यथा योग्य आदर करना।

(घ) उपचार विनय—शास्त्र को आते देख कर खड़ा हो जाना दंडवत करना, आचार्यादिक के पीछे चलना, कायदे से बैठना, हाथ जोड़ना आदि व्यवहार-विनय को उपचार विनय कहते हैं।

३ वैयावृत्य—अपने शरीर से तथा भोजनादि व पुस्तकादि दान कर व उपदेश देकर धर्मात्मा मुनि तथा श्रावकों की सेवा करनी सो वैयावृत्य नामा तप है।

४ स्वाध्याय—आलस्य को छोड़ कर ज्ञान की भावना करना सो स्वाध्याय है यह पांच प्रकार का होता है।

क—वांचना—स्वयं शास्त्र को पढ़ना।

ख—प्रेछना—पढ़ते हुए जहां न समझे उसको अपने से विशेष जानकार से पूछना।

ग—अनुप्रेक्षा—जो कुछ पढ़ा व पूछा उसको वार वार विचार करना।

घ—आम्नाय—जो विचार करके निर्णय किया होय उसको प्राचीन आचार्य तथा विद्वानों के कथन से मिलान करना।

ङ—धर्मोपदेश—अन्य जीवों को जो तत्वों के मतलब आप समझ रक्खे हैं सो समझाना।

५—व्युत्सर्ग—देह तथा देह के सम्बन्ध को अपना न मानना। इसी लिये वाहरी धनादि परिग्रह तथा अंतरंग

तथा आत्मा ठेज नहीं. एम सर्वथा विछेद माने, ते तद्व्यतिरिक्त मिथ्या एम वे नेदे नवमी (मि- छादंसणवत्ती के०) मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया. अविरतिए करी पच्चरकाण कीधा विना जे सर्व वस्तुनी क्रिया लागे, ते दशमी (अपच्चरकाणीय के०) अप्रत्याख्यानिकी क्रिया जीव तथा अजीव नेदे वे प्रकारे ठे. (य के०) च, वली कौतुके करी अश्व, पाषाण, प्रमुखने जोवुं, ते अग्यारमी (दिठि के०) दृष्टिकी क्रिया जीव तथा अजीव नेदे वे प्रकारनी ठे. रागने वशे करीने जे पुरुष, स्त्री, गाय, वलद, वस्त्र प्रमुख सुकुमार वस्तुने स्पर्श करवो, तेथी जे क्रिया लागे, अथवा कोइ संदेह उत्पन्न थयाथी पूठवुं, तेथी जे क्रिया लागे, ते वारमी (पुठि के०) स्पृष्टिकी अथवा पृ- ष्ठिकी क्रिया. जीव तथा अजीव नेदे वे प्रकार- नी ठे. (य के०) च, वली जीव तथा अजीव

क्रोधादिक तथा कायकी ममता को छोडना सो व्युत्सर्ग नामा तप है।

६—ध्यान—यही वह तप है जोकि कर्मों की निर्जरा बहुत शीघ्र कर सकता है तथा ऊपर कहे हुए ६ प्रकार के बाहरी तप और पांच प्रकार के अन्तरंग तप इसी तपकी सहायता करने के लिये किये जाते हैं।

अध्याय १८ वां

ध्यान

ध्यान ही एक वह प्रधान मार्ग है जिसके द्वारा हमारे कर्मों के बन्धन एका एक टूट पड सकते है, यह वह रसायन है जिसको खाकर एक महा रोगी पुरुष वीतरागी होकर उसी दम से शिवरमणी को वर सकता है—यह वह राग है जिसमें मोहित हो कर सुकुमाल जीको यह न मालुम पडा कि उनकी देह का कोई नाहरी खारही है, यह वह रूप है जिस में मस्त हो जाने से तीन पांडवों ने अपने शरीर को जलते हुए लोहे के गहनों से विभूषित होता हुआ भी कोई दुख न मालुम किया—यह वह चरणी है जिसका स्वाद ले लेने से रामचन्द्र जी अपनी स्त्री सीता जी को प्रत्यन्द्र की पर्य्याय में रहकर तरह तरह के पांचों इन्द्रियों के स्वादों का नाटक दिखलाये जाने पर भी रंचमात्र मोहित न हुए थे। यह क्याही भली भंग है कि जिसके रंग की तरंग में लहराते हुए एक महात्मा के गले में हजारों चींटियों से लिपटा हुआ मरा सांप कई दिन तक पडा रहा पर उनके मन का बाल भी बांका न

तथा अजीव संबंधी, एम बे प्रकारे छे. पोताने हाथे अथवा श्वानादिक जीवथी तथा शस्त्रादिक अजीवथी जे शशकादिक जीवने मारवा, अथवा कोइ पुरुष अत्यंत अभिमान करीने क्रोधित चित्तवंत थको जे काम पोताना नोकरो करी शके, ते काम पोताना हाथथी करे, ते सोलमी (साहत्ती के०) स्वाहस्तिकी क्रिया जीव तथा अजीव भेदे बे प्रकारनी छे.

आणवणि विअरणीआ, अणभोगा अणवकंखपच्चइआ ॥ अन्ना पओग समुदा,-ण पिज्ज दोसेरिआवहिआ॥२४॥

गाथा २४ मीना छूटा शब्दना अर्थ.

आणवणि—आज्ञापनिकी, आनयनिकी.	अन्ना—अपरा, बीजी.
विआरणिअ:—विदारणिका.	पओग—प्रयोगिकी.
अणभोगा—अनाभोगिकी.	समुदाण—समुदानकी.
अणवकंखपच्चइआ—अनवकांक्षाप्रत्ययिकी.	पिज्ज—प्रेमिकी.
	दोस—द्वेषिकी.
	इरिआवहिआ—इर्यापथिकी.

हुआ। जो इस आनन्द दायनी विद्या को वश में करलेते हैं उनको न भूख है न प्यास है न रोग है न किसी वस्तु की आशा है। वे सदा ही मस्त रह कर सुख उड़ाते हैं। संसार को जलती हुई तृष्णा की लपकों से उनके आंचल बिलकुल दूर रह जाते हैं। यह वह रत्न है जिसका धनी ईश्वरत्व की पदवी से किसी प्रकार कम नहीं, यह वह मन्त्र है जिसका कर्त्ता जगन्मोहनी के जेता से तुल्यता करने में असमर्थ नहीं यह वह अग्नि है जिसकी शीघ्र लपक कर्म कष्टों के भस्म करने में अपनी अनुपमता से किंचित् भी दूर नहीं। पाठको! इस निरुपम ध्यान के विषय का मनन करना परमावश्यक है—जैन मत का दारमदार इसी ही की थिरता पर स्थिर है। जो जो सुगम ग्रन्थ मेरे देखने में आए हैं उनमें श्री ज्ञानार्णव जी की महिमा अगाधही विदित हुई है। श्रीमान् परमोपयोगी श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित यह ग्रन्थ है। श्री शुभचन्द्राचार्य ने यह ग्रंथ अपने लघुभ्राता भरथरी के समझाने के हेतु रचा था—राजा भोज जिनके समय में कालिदास व प्रसिद्ध आचार्य श्रीमान् तुंग व धनजय जी हुए हैं इन्ही के छोटे भाई थे-इन का जीवन चरित श्री भक्तामरचारित्र में भले प्रकार दिया हुआ है।

इस ग्रन्थ में ध्यान का विषय जैसा उत्तम वर्णन किया गया है मुझे विश्वास है मेरे ऐसे अल्प ज्ञानियों के देखने में कम आया होगा—मैं यहां उसी की कुछ छाया लेकर अपने बिचारवान पाठकों के हेतु किंचित् वर्णन करूंगा—

अनायुक्तप्रमार्जिना क्रिया, एम बे जेदे छे. पोताना तथा परना हितनी आकांक्षा रहित आ लोक तथा परलोकथी जे विरुद्ध कार्यनुं आचरण करवुं, ते वीशमी (अणवकंखपच्चइआ· के०) अनवकांक्षाप्रत्ययिकी क्रिया ते स्वअनवकांक्षा अने पर अनवकांक्षा, एम बे प्रकारे छे. हवे (अन्ना के०) अन्या, एटले पूर्वे वीश कही, तथी वीजी. मन, वचन, तथा कायाना शुभाशुभ व्यापार-रूप जे क्रिया, तेमां प्रवर्त्तन करवुं, पण निवर्त्तवुं नहीं, ते एकवीशमी (पओग के०) प्रायोगिकी क्रिया. कोइक एवुं मोटुं पाप करे, के जेथकी आठे कर्मनुं समुदायपणे ग्रहण थइ जाय, ते बावीशमी (समुदाण के०) सामुदायिकी क्रिया अथवा जेना वडे विषय ग्रहण कराय, ते समादान क्रिया पण कहेवाय. माया तथा लोभ वडे जे कांइ करवुं, एटले प्रेमनां वचन एवां बोले,

चित्त को एक ज्ञेय की तरफ लगाने का नाम ध्यान है। ज्ञेय वह वस्तु है जो जानने में आ सकती है। यह ध्यान ४ प्रकार का होता है जिनमें दो भेद तो अशुभ अर्थात खोटेध्यान है और दो शुभ अर्थात् अच्छे ध्यान हैं। दो खोटे ध्यान आर्त और रौद्र हैं। आर्त ध्यान का यह लक्षण है।

दोहा

दुख के कारण आवते, दु ख रूप परिणाम।
भोग चाहि यह ध्यानदुर, आर्त तजो अघधाम॥
(ज्ञा० अ० २५)

भावार्थ—आर्त नाम दुखी होने का है—जर विचार जिससे परिणाम (भाव) दु खी हो आर्त ध्यान कहलाता है। परिणाम दु खी होने के ४ कारण है १ इष्ट वियोग जिस चेतन व अचेतन वस्तु से हम प्रीति (राग) करते थे उस चीज, मनुष्य व पशु का हम से जुदा हो जाना और हमारा इसी लिये रज करना (२) अनिष्ट संयोग--जो चेतन व अचेतन चीज हमको बुरी मालूम होती है उसी के साथ होने से हमारा रज करना (३) पीडा चिन्तवन रोगादि दु ख होने पर रज करना (४) निदान दूसरे की विस्मृत धन दौलत देख कर अपने दिल में रज मानना तथा अपने पास होने की चाहना करना।

दूसरा रौद्र ध्यान है इसका लक्षण यह है—

दोहा।

पंच पाप में हर्ष जो रौद्र ध्यान अघखानि।

पोताना आत्माने नरकादिकमां जवाने वास्ते अधिकारी करे, ते अधिकरणिकी क्रिया. ३ जेमां प्रकर्षे अधिक दोष (द्वेष) होय, ते प्राद्वेषिकी क्रिया. ४ जीवने परिताप आपवाथी जे क्रिया उत्पन्न थाय, ते पारितापनिकी क्रिया. ५ प्राणीओने विनाश करवानी क्रिया, ते प्राणातिपातिक्रिया. ६ पृथिवी आदिक ठ कायने उपघात करवानुं जे क्रियामां लक्षण होय, ते आरंभिकी क्रिया. ७ विविध उपाये करी धन उपार्जन करवामां तथा धन रक्षण करवामां जे मूर्छाना परिणाम, तेथी उत्पन्न थयेली जे क्रिया ते पारिग्रहिकी क्रिया. ८ मायाज ठे प्रत्यय एटले हेतु जेनी, एटले मायानी ज्यां प्रधान प्रवृत्ति ठे, ते मायाप्रत्ययिकी क्रिया. ९ मिथ्यात्वज ठे प्रत्यय एटले कारण जेनुं, ते मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया. १० संयमना विघातकारक जे कषाय

आर्त कह्यो दुःख मगनता, दोऊ तज निज जानि।

भावार्थ—पापों में खुशी मानने के भाव होना सो रौद्र ध्यान है इस विचार के होने के मुख्य ४ कारण हैं [१] हिंसानन्द-अपने मन से, वचन से व काय से दूसरों को स्वयं प्राण पीड़ा करना, व प्राण पीड़ा कराना व प्राण पीड़ा व कोई हानि किसी की सुनके हर्ष मानना [२] मृषानन्द झूठ बोल के, बुलाके, व बोला हुआ सुनके खुशी मानना [३] चौर्यानन्द—चोरी करके कराके व करी हुई सुनके खुशी मानना [४] परिग्रहानन्द— संसारिक सामग्री बढ़ा के बढ़वा के, व बढ़ी हुई देख सुनके आनन्द मानना।

इन आर्त रौद्र ध्यानों के करने से किसी जीव का कुछ भी भला नहीं होता बल्कि दुहरी हानि होती है। एक तो इस भव में दुःख होता है दूसरे वह प्राणी ऐसे अशुभ कार्माण परमाणुओं को खींच लेता है जिनका फल अन्यभव में भुगतना होता है। इस लिये जो कर्मों के संवर व निर्जरा करने वाले ध्यान को करना चाहते हैं उनको यह दोनों ध्यान त्यागने योग्य हैं। ध्यान करने वाले को दो अच्छे ध्यानों को विचार करना चाहिये। १ धर्म ध्यान २ शुक्ल ध्यान। शुक्लध्यान के होने लायक भाव इस काल में हमारे नहीं हो सकते हैं। इस कारण इसका वर्णन यहां बिलकुल न कर केवल धर्मध्यान का वर्णन हम करेंगे।

अध्याय १९ वां

धर्म ध्यान।

ध्यान में चार मुख्य बातों को जानना चाहिये १ ध्याता

क्रिया कराय, ते स्वाहस्तिकी क्रिया. १७ श्री अर्हंत नगवंतनी आज्ञा उल्लंघन करी पोतानी बुद्धिथीजीवाजीवादि पदार्थोंनी प्ररूपणा द्वारा जे क्रिया, ते आज्ञापनिकी क्रिया. १८ बीजानां अठतां माठां आचरणने प्रकाश करी तेनी पूजानो नाश करवो, तेथी उत्पन्न थयेली जे क्रिया ते वैदारणिकी क्रिया. १ए (आभोग के०) उपयोग ते थकी जे विपरीत होय, तेने अनाजोग कहीए; तेणे करीने उपलक्षित जे क्रिया, ते अनाजोगिकी क्रिया. २० पोतानी तथा पारकी जे अपेक्षा करवी, तेनुं नाम अवकांक्षा ठे, ते थकी जे विपरीत होय, तेने अनवकांक्षा कहीए; तेज ठे (प्रत्यय के०) कारण जेनुं एटले परमेश्वरे कहेली जे करवा योग्य विधिउ, ते विधिउ मांहेली कोइ कोइ पण विधिउ पोताने अथवा कोइपरजीवने हितकारी ठे, ते विधिउमां

ध्यान करने वाला २ ध्यान क्या है, व क्योंकर हो सकता है, ध्येय –ध्यान किसका करें ४ ध्यान का फल क्या है।

ध्याता

ध्यान करने वाले का यह लक्षण है।

सोरठा

जो गृहत्यागी होय सम्यक रत्नत्रय बिना
ध्यान योग नहि सोय, ग्रहवासी की का कथा
(ज्ञा० अ० ४)

दोहा

रत्नत्रय को धारि जे, शम दम यम चितदेय
ध्यान करें मन रोकि कैं, धनिते मुनि शिवलेय।
(ज्ञा, अ ५)

भावार्थ—जो तीन रत्न को अर्थात सम्यक दर्शन (भले प्रकार सात तत्वों का श्रद्धान) सम्यक ज्ञान (भले प्रकार सात तत्वों का जान पना) सम्यक चरित्र (भले प्रकार सात तत्वों में आचरण) के धारी हैं और समता अर्थात् शान्तता के धारक पांच इन्द्रियों का जन्म पर्यन्त छोड़न वाले ऐसे जो मुनि मन को रोक के ध्यान करते हैं वे कर्मों की निर्जरा करके शिव पद को लेते हैं और जिन्हों ने घर तो छोड़ दिया परन्तु तीन रतन नहीं धारे वे कभी ध्यान नहीं कर सकते हैं। उनसे तो वे गृहस्थी ही भली प्रकार ध्यान कर सकते हैं जो जो सम्यगदर्शन सहित होता है जैसे आ ढूंढ़ान मठ न अष्टमी

हवे आ पचीस क्रिया कोने कया गुणस्थान सुधी होय ते कहे छे—

पेली कायिकी सामान्यपणे कषायोदयवंत सर्व काययोगी जीवोने होय, विशेषपणे अनुपरतकायिकी अविरत सुधी होय, अने दुष्प्रयुक्त कायिकी अनुपयोगी मुनिने पण होय, बीजी अधिकरणिकी बादर कषायोदयी जीवने होय, माटे नवमा गुणठाणा सुधी होय, त्यां देहपण अधिकरण थाय छे. त्रीजी प्राद्वेषिकी क्रोधकषायोदयीने (९ मा गु० सुधी) होय. चोथी पारितापनिकी क्रिया बादर कषायोदयी जीवने (९ मा गुण सुधी) होय. पांचमी प्राणातिपातिकी अविरत जीवोने (५ मा गु० सुधी) होय, आ क्रिया हणेलो जीव मरण पामे, तोज लागे, अन्यथा नही. छठी आरंभिकी क्रिया. सर्व प्रमादयोगी जीवोने (६ ठा गु० सुधी) होय.

के दिन नगर वाहर बन में ध्यान लगाया था। हा ! क्या स्थिर ध्यान था कि राजा की अर्द्धांगिनी द्वारा अनेक कष्ट दिये जाने तथा आपत्तियों के भीतर पटके जाने पर भी वे अपने ध्यान को नहीं छोड़ते भए।

जो मुनि मारण, उच्चाटन, वशीकरण, इंद्रजाल, वैद्यक, ज्योतिष आदि क्रियाओं के करने में परिणाम रखते हैं वे कभी धर्म ध्यान नही कर सकते हैं। यह ध्यान तो १२ भावनाओं के रस में मगन हो जाने वाले मनुष्योंही के पल्ले पड़ सकता है, अन्यों के नही।

ऐसे ध्यान के चाहने वाले को किस स्थान पर बैठ कर ध्यान करना चाहिये।

अध्याय २० वां

ध्यान का स्थान

दोहा

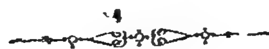
जहां क्षोभ मन ऊपजै, तहां ध्यान नहिं होय।
ऐसे थान विरुद्ध है ध्यानी त्यागै सोय॥

भावार्थ

जिस जगह पर बैठने से मन में कुछ भी घवड़ाहटपैदा हो वह जगह ध्यान करने के लायक नहीं है—क्योंकि स्थान के सवव से भी मन विगड़ जाता है व निश्चल हो जाता है। इस लिये ऐसी जगह वैठ कर,,ध्यान,,नही हो सकता है, जहां

वीसमी अनवकांक्षाप्रत्ययिकी बादर कषायोदय-प्रत्ययिक होवाथी ए मा गु० सुधी होय. एक-वीसमी प्रायोगिकी शुभाशुभ सावध योगवा-ळाने ए मा गु० सुधी होय. बावीसमी समादान क्रिया इंद्रिय अव्रतवाळा जीवने ५ मा गु० सुधी होय. त्रेवीसमी प्रेमिकी लोभना उदयरूप हो-वाथी १० मा गु० सुधी छे. चोवीशमी द्वेषिकी बादर कषायोदयवाळाने ए मा गु० सुधी छे, अने पचीशमी इर्यापथिकी ११–१२ अने १३ मा गु० वाळा अकषायी जीवने योगमात्रथीज होय छे. ए रीते १३ मा सिवाय २४ क्रिया कया जीवने कये गुणस्थाने होय, ते जाणवी.

ए पचीश क्रियाउं कही, ते पूर्वे कहेला सत्तर भेदो साथे मेळवतां आश्रवतत्त्वना बेंतालीश भेद थाय ॥ इति आश्रवतत्त्वं समाप्तं ॥



मनुष्य स्त्री, नपुसकों का आना जाना हो, जिस स्थान पर किसी खास मनुष्य का अधिकार हो, जहा भेषधारी साधुओं का रहना हो। जहा का राजा दुष्ट हो तथा जहा जुआरी, आदि व्यसनी जीव आते जाते हों।

ध्यान करने के स्थान तो यह हैं—सिद्ध क्षेत्र—जहा से महान् पुरुषों ने मुक्ति पाई, तीर्थक्षेत्र—जहा, तीर्थंकरो के जन्म तप व ज्ञान कल्याणक हों, समुद्र व नदी के किनार वन के बीच पहाड की चोटी, शालमली वृक्षों के झुंड, जल के बीच टापू, वृक्ष की खोल उजडा बगीचा, मशानभूमि पहाड की गुफा आदि।

बिना एकान्त स्थान के मन एक ओर नहीं जम सकता है। जो जो विद्वान हुए सब ने एकान्त ही में मनन कर विद्या को प्राप्त किया है। विद्याधर लोग विद्या साधने के लिये जगलों में अकेले रहते थे तब विद्या को सिद्ध कर पाते थे—यूरप में जो जो प्राचीन विद्या के उद्धारक व प्रचारक हुए हैं सबने एकात स्थान ही में अपन मन को स्थिर कर काम किया है। Newton (न्यूटन) Buffon (बफन) Wiclifle (वीक्लिफ) Luther (लूथर) knox (नाक्स) Olie ver Cromwell (ओलाइवर क्रामवेल) Words worth (वडस्वर्थ) Carlyle [कारलाइल] Gold smith [गोल्डस्मिथ] Scott [स्काट] Lord Byron [लार्ड बेरन] Shakespeare [शेक्सपीयर] आदि प्रसिद्ध यूरुपाय विद्वान एकात स्थान में विचार करने के कारण अपने अपने कर्त्तव्य में उन्नति कर सके—

प्रमुखे करी परिणामने पाम्युं जे शुद्ध उपयोग रूप द्रव्यपणुं, तेथी नावकर्मना रोधक आत्मानां परिणाम थाय छे, तेने नावसंवर कहीए. तेमां (समिईगुत्तिपरिसहा के०) समितिगुप्तिपरिसहाः, एटले समिति, गुप्ति अने परिषह, तथा (जइ-धम्मो के०) यतिधर्मः, एटले साधुधर्म, तथा (नावणा के०) नावना, तथा (चरित्ताणि के०) चारित्राणि, एटले चारित्र, ते सर्व अनुक्रमे (पणतिडुवीसदसबारपंचन्नेएहिं के०) पंचत्रिद्वाविंशतिदशद्वादशपंचन्नेदैः, एटले पांच, त्रण, बावीश, दश, बार, अने पांच न्नेदे करी (सगवन्ना के०) सप्तपंचाशत्, एटले सत्तावन न्नेद संवरना थाय. ते विस्तारथी कहे छेः—तेमां सम्यक प्रकारे जे चेष्टा करवी ते समिति कहेवाय, ते पांच छे. योगनुं जे गोपन करवुं, ते गुप्ति कहेवाय. ते त्रण छे. सर्व प्रकारे निर्जराने अर्थे

Jean Paul Richetr [जीनपाल रिकूर]:का कथन है- "All worthy things are done in solitude" अर्थात् जितने योग्य काम हैं सब एकांत स्थान में ही किये जाते हैं।

Lacordaire [लेकर डेयर] का कथन है—

"I believe solitude is as necessary to friendship as it is to sanctity, to genius as to virtue"

अर्थात्—मुझे यह विस्वास है कि विना एकान्त मे वास किये न सच्ची मित्रता आती है न मानसिक पवित्रता प्राप्त होती है, न बुद्धि मे तीव्रता और न व्यवहार की सचाई आती है। संसारिक उन्नति में भी मन की स्थिरता के लिए जब एकान्त कानन प्रिय है तब आत्मिक उन्नति कही एकान्त बास के विना आ सकती है? कदापि नहीं। इसी लिये जो कर्म की निर्जराकारक ध्यान धरा चाहते हैं वे गृहस्थी के वास को छोड़कर मोह सर्व वस्तुओ का हटाकर अपने आपही के ध्यान में मग्न हो जाने के लिये ऐसी जगह पर जाकर विचार करते हैं जहां उनके मन को संसारिक व्यथा नहीं व्याप सकती है। गृहस्थ भी ध्यान का अभ्यास करते है इस लिये उनको इस अभ्यास के लिये अपने नियत समय तक ऐसी शून्य जगह पर बैठ कर मनन करना चाहिये जहां उनके चित्त को उसकाने वाला कोई पदार्थ न हो। स्थान ठीक करने के बाद ध्यानी को अपना आसन भी ठीक रखना चाहिये।

गाथा २६ मीना वूटा शब्दना अर्थ.

इरिया—इर्यासमिति.	अ—अने, वली.
भासा—भाषासमिति.	मणगुत्ति—मनगुप्ति.
इसणा—एषणासमिति.	वयगुत्ति—वचनगुप्ति.
आदाणे—आदाननिक्षेपणासमिति.	कायगुत्ति—कायगुप्ति.
उच्चारे—पारिष्ठापनिकासमिति	तहेव—तेमज.
सुसमिईसु—समितिओमां.	य—अने.

विस्तारार्थः—गाथाना पूर्वार्द्धें करी पांच समितिनुं वर्णन करे छे. तेमां (समिईसु के०) समितिषु, एटले सम्यक चेष्टा. तेमां १ जयणा राखी उपयोग सहित धुंसरा प्रमाण ३॥ हाथ जूमिका द्रष्टिए जोइने बीज, लीलोतरी, पाणी, त्रस जीवादिथी सचित्त जूमिने वर्जी जे चालवानी चेष्टा करवी, ते पहेली (इरिया के०) इर्या, एटले इर्यासमिति कहेवाय. तथा २ जे वचन सत्य होय, कहेवा योग्य होय, सत्य, असत्य,

अध्याय २१ वां

आसन

जब तक आसन मजबूत न होगा मन स्थिर न रहेगा, आसन मजबूत रखने से गरमी सरदी पाले आदि की तरह तरह की पीड़ा होने पर भी मन नहीं चलायमान होता है—जिन का मन बिलकुल वश में हो गया है उनके लिये आसन का कोई विशेष नियम नहीं है किन्तु ध्यान साधने वाले के लिये आसन की मजबूती जरूर होनी चाहिये। ध्यान करने के आसन बहुत से हैं जिनमें दो आसन बहुत सुगम और प्रचलित हैं। १ पर्यंकासन २ कायोत्सर्ग—पर्यंकासन में दोनों पैर के तलवे अपनी जांघों पर खुले मुह ऊपर को किये जमावे और दोनों हाथों की हथेली खुली हुई अपनी गोद में बांए के ऊपर दाहनी रक्खे—दोनों आखों को नाक के आगे नोक पर जमावे, भौंहे चलें नहीं होंठ न बहुत खुले न बहुत मिले हों और मुह रूपी कमल शांतरस का टपकानेवाला होय। मन में दया और वैराग भरा हो, शरीर सूधा रहे। इस आसन में ऐसा निश्चल रहे कि देखने वाले को पत्थर की मूर्ति हो मालूम हो। यह आसन भगवान की प्रतिबिम्ब जो हमारे मन्दिरों में विराजमान रहती है इस पर्यंकासन को भले प्रकार दर्शाती है—कायोत्सर्ग आसन में खड़े हो ४ अंगुल के अन्तर से दोनों पैर बराबर रखकर दोनों हथेली लटकती हुई मुख नेत्र की चेष्टा पर्यंकासन कीसी हो। इन दोनों आसनों में एक आसन के जीतने का यत्न अवश्य करना योग्य है।

शब्द छे, ते कहेवाथी निक्षेप शब्द पण साथे लेवो. केनी पेठे? तो के जेम भीम शब्द कहेवाथी भीमसेन समजाय छे, तेम अहींयां पण जाणी लेवुं. अने ५ परठववा योग्य जे मल मूत्रादिक वस्तु, तेने स्थंडिलभूमिकाने विषे उपयोगपूर्वक जे मूकवानी चेष्टा करवी, तथा सदोष तथा वधेलां आहार उपकरणादिकने परठववानी जे चेष्टा करवी, ते पांचमी (उच्चारे के०) उच्चारः, एटले उत्सर्ग समिति पारिष्ठापनिकासमिति कहेवाय. एवी रीते ए पांच समिति ते जाणवी (अ के०) च, हवे गाथाना उत्तरार्द्ध वडे त्रणगुप्तिनुं वर्णन करे छे—प्रथम (मणगुत्ति के०) मनोगुप्तिः, एटले मननुं गोपन करवुं, तेना त्रण भेद छे—तेमां अपध्याने करी उत्पन्न थयेली कल्पनाजालनो जे वियोग, ते अकुशलनिवृत्तिरूप पहेलो भेद, धर्मध्याने करी मध्यस्थपणानी

दोहा

आसन दृढ़ते ध्यान में, मनलागे इकतान ।
ताते आसन योग्यकूं, मुनि करि धारैं ध्यान ॥
(आ० अ० २८)

भावार्थ—जिस आसन के रखने से मुनि का मन निज स्वरूप में लगे उसी आसन को रखकर मुनि आत्मध्यान करते हैं ।

अध्याय २२ वां

प्राणायाम ।

ध्यान करने वाले के लिये यह बहुत जरूरी बात है कि उसका मन थिर हो—क्योंकि बिना मनके स्थिर किए हम कदापि आत्मध्यान नहीं कर सकते हैं। यदि ध्याता ने अपने ज्ञान वैराग्य तथा इन्द्रियों के रोकने से मन को सहजही में वश कर लिया है तो उसके लिये प्राणायाम की ज़रूरत नहा है—किन्तु जिस ध्याता का मन चंचल है अर्थात् ध्यान करते वक्त वश में भले प्रकार न रहकर विषय कषाय सम्बन्धी तरह तरह के विकल्प भावों के अन्दर जाता है उसके लिये ध्यान शुरूकरने के पहिले प्राणायाम का साधन बहुत जरूरी है।

इस प्राणायाम के साधन से लौकिक प्रयोजन भी सिद्ध होते हैं—किन्तु मोक्ष मार्गपर चलने वाले को लौकिक मतलब से कभी प्राणायाम करना उचित नहीं है—क्योंकि लौकिक प्रयोजन संसारिक रागद्वेष के करने वाले हैं—दूसरे के हानि लाभ को बतलाना, वशीकरण, मारण उच्चाटन, आदि करना

ए उपरथी वचनगुप्ति अने भाषासमिति ए बे-उमां एटलुं अंतर छे, एम जाणवुं; (य के०) च, अने (तहेव के०) तथैव, एटले तेमज त्रीजी (कायगुत्ति के०) कायगुप्ति एटले कायानुं गोपन करवुं, तेना पण बे भेद छे—उपसर्ग परिसह आदि उत्पन्न थयाथी पण जे काया स्थिर राखवी, अथवा चौदमे गुणठाणे योग निरोधाव-स्थाए सर्वथा शरीरनी चेष्टानो त्याग करवो, ते चेष्टानिवृत्तिरूप पहेलो भेद, अने शयन, आ-सन प्रमुखने विषे सूत्रोक्त विधिए करी चेष्टानो नियम करवो, एटले माथा तले हाथ घाली गोठण संकोची, कूकमीनी पेठे पग पसरीने सुवुं, ते यथासूत्रचेष्टानियमिनी नामे बीजो भेद जाणवो. ए समिति अने गुप्तिना अर्थमां एटलुं विशेष छे, के सम्यक् प्रकारे चेष्टारूप जे प्रवृ-त्ति करवी, ए समितिनुं लक्षण छे, अने गुप्त

तथा पशुपक्षी आदि के शरीर के अन्दर फिरना आदि काम इस प्राणायाम के द्वारा किए जा सकते हैं—इस प्राणायाम का वर्णन भी ज्ञानार्णव ग्रंथ के २८ वें अध्याय में किया है—इस अध्याय के श्लोक ९८, ९९ व १०० का यह मतलब है कि प्राणायाम का भले प्रकार साधनेवाला योगी एक चित्त होकर भौंरा, पतंग, व अंडज पक्षी तथा हिरन आदि पशुओं के शरीरों में चला जा सकता है तथा मनुष्य घोड़ हाथी आदि के शरीरों में अपनी इच्छा के अनुसार जा सकता है तथा निकल आ सकता है। इसी तरह पत्थरों के अन्दर भी जा सकता है। यहां तक कि ऐसा योगी अभ्यास के बल से शरीर रहित आत्मा की तरह चाहे जहां अपनी इच्छा से घूम आ सकता है।

प्राणायाम—पवन (हवा) के साधने को कहते हैं-शरीर में हर जगह हवा घूमती है। मुंह व नाक के द्वारा जाती आती प्रत्यक्ष विदित होती है इसी हवा के कारण मन भी चचल रहता है—इस हवा के रोकने की तरकीब प्राणायाम है—

यह प्राणायाम तीन तरह का होता है।

१ पूरक—हवा का तालू के छेद से खींच कर देह में भर लेना।

२ कुंभक—इस खींची हुई हवा को नाभि के स्थान पर इस तरह रोक देना जो यह नाभि को छोड़ कर दूसरी जगह न जाने पावे।

विस्तारार्थः—तेमां प्रथम परिसह शब्दनो अर्थ कहे छे, जे जैनमार्गने नहीं मूकवाने अर्थे तथा कर्मनी निर्जरा करवाने अर्थे दुःखने (परि के०) समस्त प्रकारे (सह के०) सहन करवुं पडे, तेने परिसह कहीए. व्याकरणमां लख्युं छे के, "परिसह्यत इति परिसहः" ते परिसह सर्व मली बावीश छे, तेमां एक दर्शनपरिसह अने बीजो प्रज्ञापरिसह, ए बे परिसह तो जैनमार्ग न मूकवाने अर्थे छे, अने शेष वीश परिसह जे छे ते कर्मनिर्जरा करवाने अर्थे छे. ए बावीशे परिसहोनां अर्थ सहित नाम तथा एक पछी बीजा परिसहने अनुक्रमे कहेवानां कारण कहे छे.

१ (खुहा के०) क्षुधा, एटले क्षुधापरिसह छे, ते क्षुधा एवुं भूखनुं नाम छे, ए भूखथी उत्पन्न थनारी वेदना बीजी समस्त वेदनाओथी अधिक

३ रेचक – इस हवा को अपने कोठे से धीरे धीरे निकास कर बाहर कर देना। जो हवा नाभि से हटा कर हृदय कमल में होती हुई तालू के छेद के स्थान पर ठहराई जाती है उसको पवन का परमेश्वर कहते हैं।

पूरक, कुंभक, रेचक का जब बराबर अभ्यास हो जाय तब योगी हृदय के कमल में हवा के साथ अपने मनको जोड़ कर थांभ देते हैं—इस तरह मनको थांभ ने से जबतक मन रुकेगा कोई और भाव पैदा न होकर विषयों की आशा मिट जायगी और भीतर ज्ञान बढ़ता हुआ चला जायगा।

मन के वश करने के लिये सिर्फ इतना अभ्यास प्राणायाम का जरूरी है। प्राणायाम के द्वारा लौकिक प्रयोजन साधने के लिये इस २८ वें अध्याय में बहुत सी युक्तिया पवन के वश करने की कही हैं उनका वर्णन में प्राणायाम शीर्षक लेख में किसी समय पर दिखाऊंगा—यहां "ध्यान" विषय में केवल मन के वश करने का प्रयोजन है—२८ वे अध्याय का सार टीकाकार श्रीमान् पंडित जयचंद जी ने इस एक कवित्त में दिखलाया है—

कवित्त।

आसन थान सवांरि करै मुनि प्राणायाम समीर संभार।
पूकर कुंभक रेचक साधन निज आधीन सुतत्व विचार॥
जगत रीति सम लखैं शुभाशुभ अपने हानि वृद्ध निरधार।
मन रोकै परमातम ध्यावै तब यह सफल न आन प्रकार॥

३ (सी के०) शीतं, एटले शीतपरिसह. ते क्षुधा तथा तृषाए पीडितने शीतपणुं थाय, माटे त्रीजो शीतपरिसह गण्यो छे. तेमां शीत कालने विषे जे वारे अत्यंत टाढ पडे, ते वारे कल्पनीय वस्त्रने अन्नावे गृहादिके रहित छतो पण अकल्पनीय वस्त्रनी वांछा न करे, तथा पोते अग्नि प्रदीप्त करी तापे नहीं, तेमज बीजाए प्रदीप्त करेला अग्निथी पण तापे नहीं, परंतु अल्प जीर्ण वस्त्र करी सम्यक् परिणामे शीत सहन करे.

४ (उएहं के०) उष्णं, एटले उष्णपरिसह. ते उष्ण ऋतु जे छे, ते पूर्वोक्त शीत ऋतुनी विपक्षीन्नूत छे, माटे शीत पछी ए चोथो उष्णपरिसह गण्यो छे. तेमां उष्ण कालने विषे तप्त शिलाए रह्यो छतो सूर्यनुं प्रतिबिंब माथे आवे, एवा मध्यान्ह समयेऽत्यंत आतापना थये थके पण बत्रनी अथवा वृक्षोनी छायाने तथा

भावार्थ यही —कि आसन और स्थान ठीक कर प्राणा याम केवल मन के वस करने के लिए ही करना उचित है जिस में हम शुद्धात्मा का विचार कर सकें।

अब ध्याता के लिये प्रत्याहार धारणा की भी आवश्य कता है—

अध्याय २३ वां

प्रत्याहार धारणा ॥

मन को एक ठिकाने रोक कर रखना और उसमें ध्येय [ध्यान करने योग्य पदार्थ] का ठहराना सो प्रत्याहार धारणा है।

दोहा।

भाल आदि दशथान में ध्येय थापि मनसार।
प्रत्याहार सुधारणा, यहै ध्यान विधिसार॥

(ज्ञा० अ० २६)

देह के भीतर मनको ठहराने के लिये दस जगह हैं— जैसा कहा है।

मदाक्रांता छंद।

नेत्रद्वंद्वे श्रवणयुगले नासिकाग्रे ललाटे, वक्त्रे नाभौ शिरसि हृदये तालुनेत्रे युगान्ते। ध्यानस्थानान्यमलमतिभि: कीर्तितान्यत्र देहे तत्रैकस्मिन् विगत विषय चित्तमालम्बनीयम्। १३

[ज्ञा० अ० २६]

६ (अचेलरइत्थिओ के०) अचेलारतिस्त्रियः, एटले अचेल, अरति अने स्त्रीसंबंधी परिसह तेमां प्रथम अचेलकपरिसह. ते पूर्वोक्त दंशादिके पराभव पाम्यो थको पण वस्त्रने वांछे नहीं, तेथी अचेलकपरिसहने छठो गण्यो छे. अचेलक एटले शुं? तो के (चेल के०) वस्त्र तेनो (अ के०) अभाव ते अचेलक जाणवो. आ ठेकाणे सर्वथा वस्त्रोनो अभाव होय, तेनुंज नाम अचेलकपरिसह नथी, परंतु आगममां जे जे वस्त्र राखवानुं प्रमाण कह्युं छे, ते प्रमाणे राखे, तो तेने अचेलकपरिसह कहेवो. हवे त्यां शंका करे छे के, जो कांइ पण वस्त्र राखे, तोपण ते परिग्रहज कहेवाय. त्यां कहे छे, के जो मूर्छा सहित वस्त्र राखे, तो परिग्रह कहेवाय, परंतु मूर्छा रहित अपरिग्रहपणाए शास्त्रोक्त रीते राखे, तो अचेलक जाणवो. तेमां साधुने फाटेलुं

भावार्थ—मन ठहराने के १० स्थान यह हैं १ दोनों आँखें २ दोनों कान ३ नाक की नोक ४ माथा ५ मुंह ६ नाभी ७ सिर ८ हृदय [दिल] ९ तालू १० दोनो भौंहों के बीच का भाग॥ इन में से किसी जगह मनको रोक कर ध्येय (परमात्मा) का विचार करना है सो प्रत्याहार धारणा है।

ध्याता आसन, स्थान, प्रत्याहार धारणा को ठीक करने के पीछे इस बात की प्रतिज्ञा अपने चित्त में करता है कि मैं अनादि काल से कर्मरूपी जाल से बँधा हूं, इसी से संसार में नाना प्रकार के दुःख अविद्या के कारण पाए-मेरा स्वभाव परमात्मा के समान ज्ञाता दृष्टा है किन्तु कर्म की रज से मैला हो रहा है। अब मैं ध्याय के बल से कर्मों को नाशकर अपने स्वरूप को ध्यान लेऊं। इस तरह मन में कह कर वह ध्यानी रागद्वेष अपने चित्त से हटा धर्म ध्यान करना प्रारम्भ करता है।

अध्याय २४ वां

ध्येय।

जिस का ध्यान किया जाय—उसको ध्येय कहते हैं यह लोक छः द्रव्यों का ढेर है। जितनी दशाएं इस जगत में दिखलाई पड़ती हैं सब छ द्रव्यों के ही सम्बन्ध से पैदा हुई है जिन में १ जीव तो चेतन ज्ञान दर्शन मई द्रव्य है बाकी पांच पुद्गल, धर्म अधर्मः आकाश और काल अचेतन याने

ध्यावे, श्री दशवैकालिकनी प्रथम चूलिकानां अढार वस्तुनुं चिंतवन करवाथी अरति दूर थाय छे, ते प्रमाणे चिंतवन करी अरति दूर करे तथा ७ स्त्रीपरिसह. ते पूर्वोक्त संयमने विषे अरति उत्पन्न थवाथी स्त्री निमंत्री तेनी अभिलाषा करे, माटे अरति पछी आठमो स्त्री परिसह गएयो छे. तेमां स्त्रीउने दीठां थकां तेनां अंग, प्रत्यंग, संस्थान, सुरति, हसवुं, मनोहरपणुं, ललित विभ्रम, विलासादिक चेष्टाउने अणचिंतवतो थको रहे, स्त्रीउने मोक्षमार्गमां अर्गला समान जाणी, तेणे कामबुद्धिए करी दृष्टि साथे दृष्टि मेलवी जूवे नहीं, तथा पोतानी विषयेछा पूर्ण करवा माटे करेला उपद्रवने सहन करवा, ते स्त्रीपरिसह.

ए (चरिआ के०) चर्या, एटले चर्यापरिसह. चर्या एटले चालवानुं नाम छे. तेमां एक स्थले

जड़ है। धर्म ध्यानी को इन छहों द्रव्यों में से अलग कर चेतन द्रव्य को भले प्रकार विचारना चाहिये—

चेतन द्रव्य दो तरह का है १ संसारिक २ सिद्ध। जो जीव कर्मों से लिपे हुये जनम मरण करते रहते हैं संसारी हैं। जिनके कर्म का मैल नहीं वह सिद्ध परमात्मा है—

ध्यान करने वाला अपनी आत्मा को संसार की अवस्था में कमा से लिया देखता है। और जब अपनी आत्मा के असली स्वभाव पर जाता है तो अपनी आत्मा और सिद्धात्मा में कोई भेद नहीं पाता है—सिद्ध परमात्मा शुद्ध आत्मा है जिसके कोई कर्म का मेल तथा किसी प्रकार का राग द्वेष नहीं है।

अध्याय २५ वा

ध्यान और उसका अन्तिम फल।

जिस के ज्ञान म तीन लोक की सब चीजें इसी तरह झलकती हैं। जस निर्मल दर्पण में सामने की सब चीजें झलक जाता है जो इन्द्रियों के द्वारा नहीं ग्रहण में आता तथा जो ज्ञान की अपेक्षा साकार तथा पुद्गल शरीर की अपेक्षा निराकार है—इस परमात्मा में जो जो अन्तरङ्ग गुण हैं वे सब आत्मजनित मुख्य २ गुण पुद्गल शरीर सहित अरहत में भी हैं—अरहत व सिद्ध का आत्मा की तरह गुण धारने वाला अपनी आत्मा का विचारना। इस तरह ध्यान करते करते ध्याता की आत्मा परमात्मा स्वरूप में हो सकती है—

कहीए. अहींयां शून्य घर, स्मशानादिक सर्प-
बिल, सिंहगुफादिकने विषे कायोत्सर्गे रह्या
थका त्यां नाना प्रकारना उपसर्गना सद्भावे पण
अशिष्ट चेष्टानो निषेध करवो अर्थात् माठी
चेष्टा न करवी, तेने नैषेधिकीपरिसह कहीए.
अथवा कोइ ठेकाणे निषद्यापरिसह पण कह्यो
छे, ते निषद्या एवुं रहेवाना स्थानकनुं नाम छे
त्यां स्त्री, पशु, पंडक वर्जित स्थानमां रहेतां थकां
जो इष्टानिष्ट उपसर्ग थाय, तोपण पोताना
चित्तमां चलायमान न थोय, परंतु ते सर्व उप-
सर्गने उद्वेग रहितपणे सम्यक् रीते सहन करे,
ए नैषेधिकी अथवा निषद्यापरिसह.

११ (सिज्जा के०) शय्या, एटले शय्यापरि-
सह. ते पूर्वोक्त नैषेधिकीए स्वाध्याय करी श-
य्याए आवे, माटे अगीयारमो शय्यापरिसह
गण्यो छे. जेने विषे शयन करीए, तेने शय्या

अर्थात् अभ्यास करते करते कुछ दिनों में ध्यान करने वाले का द्वैत भाव (मैं आत्मा किसी परमात्मा का ध्यान करता हूं) नाश हो जाता है। उसके फिर ध्याता, ध्यान और ध्येय में कुछ भेद नहीं रहता अर्थात् अद्वैत भाव (एकी भाव) में प्राप्त हो कर्मों का नाश कर डालता है।

दोहा

पौरुष कर ध्यावै मुनी, शुद्ध आत्मा जोय।
कर्म रहित वर गुन सहित, तब तैसाही होय॥

(ज्ञा० अ० ३०)

भावार्थ—मुनि यतन करके अपनी आत्मा ही के स्वभाव में लीन होते हैं। अपनी ही आत्मा को शक्ति अपेक्षा शुद्ध कर्मों से दूर, विचारते हैं तब तैसे ही याने शुद्ध आत्मा हो जाते हैं, इस लिये ध्येय अर्थात् ध्यान करने योग्य सिवाय शुद्ध आत्मा के और कोई वस्तु नहीं है—इस शुद्ध आत्मा का ध्यान इस प्रकार विचार कर करना जैसे इस छप्पै में कहा है।

छप्पै

जड़ चेतन मिलि हैं अनादि के एक रूप जिम। मूढ़ भेद नहिं लपै प्रकृति मिथ्यात्व उदैइम। जिन आगम तै चिन्ह भेद जानै लहि अवसर। अनुभव करि चिद्रूप आप अर अन्य सकल पर। जब अंतर आतम होय करि करै शुद्ध उपयोग मुनि। तब शुद्ध आत्मा ध्यान करि लहै मोक्ष सुख मय अवनि।

(ज्ञा० अ० ३१)

वचन कहे छे, ए मारो उपकारी छे, केमके मने आ प्रमाणे ए शिक्षा आपे छे, तेथी फरी हुं एवुं काम नहीं करीश, अथवा ए पुरुष जे कहे छे, ते तो हुं करतो नथी, तथापि मारे एनी उपर जे कोप करवो ते युक्त नथी, एम चितवी क्रोध न करे,एम सम्यक् रीते आक्रोश सहन करे.

१३ (वह के०) वधः, एटले वधपरिसह. ते पूर्वोक्त आक्रोशनो करनार जे होय, ते वध पण करे, माटे आक्रोश पछी तेरमो वधपरिसह गएयो छे. तेमां कोइ दुरात्मा आवीने साधुने ढींका, पाटु, चाबक, कशादिकना आकरा प्रहार करे, अथवा वध करे, तोपण स्कंदसूरिना शिष्योनी पेरे तेना उपर बिलकुल रोष आणे नहीं, परंतु अकलुषित चित्तवंत थको एवी चिंतवना करे, के ए मारुं शरीर तो पुद्गलरूप छे, ए तो अवश्य विध्वंस थवानुं छे, अने मारो

भावार्थ--चेतन और कर्म आदि जड वस्तु का मेल अनादि काल याने हमेशा से ऐसा हो रहा है कि दोनों एक में एक हो रहे हैं--जो कि शरीर को ही आत्मा जानते हैं ऐसे जीव इस के भेद को नहीं पाते हैं। जैन शास्त्रों के उपदेश से आत्मा की और जड की अलग अलग पहचान को जान कर जो और सब चीजों से मन हटा आत्मा का विचार करते हैं वे अतरात्मा हो जाते हैं। इस तरह अपने उपयोग (भाव) को शुद्ध करते करते और शुद्ध आत्मा में अच्छी तरह लीन होते होते मोक्ष सुख की भरी अवस्था को प्राप्त करते हैं अर्थात् ससार के दु ख के प्रसार से छुटकारा पा जाते हैं।

अध्याय २६ वां

निराकार का ध्यान साकार के द्वारा ही हो सकता है।

यहा पर एक बात विचार करने की यह है कि आत्मा और परमात्मा दोनों का स्वरूप निराकार है यान सामने दिखलाई नहीं पडता, इससे एकाएक मन का आत्मा तथा परमात्मा के स्वरुप में बराबर लग रहना कठिन है। इस लिये साधने वालों के लिये निराकार का ध्यान बिना किसी साकार वस्तु पर मन लगाये नहीं हो सकता है जैसा कहा है।

अलक्ष्य लक्ष्य सबधात्,
स्थूलात्सूक्ष्म विचिंतयेत्।
सालम्बाच्च निरालम्ब,
तत्व वित्तत्वमजसा ॥ ४ ॥

(ज्ञा०अ० ३२)

ना करे, परंतु एवुं चिंतवे नहीं जे, रांधेला धान्यने अर्थे जला माणसने घेर जइ याचना करवी, ते करतां तो गृहस्थावासमां रहेवुंज नलुं, के ज्यां आपणा भुजदंडना पराक्रमथी उपजाव्युं जे अन्न, ते दीन हीनादिकने आपी पठी जमीए, एवी विचारणा करीने गृहस्थपणाने इछे नहीं, अथवा याचना करतां कोइ आपशे, किंवा नहीं आपशे, तो हुं आ गृहस्थने घेर जइ लाखनो मर्म गमावीने शी रीते याचना करुं? इत्यादिक चिंतवना न करतां याचना करे ॥ २७ ॥

अलाभ-रोग-तणफासा, मल-सक्कार-परीसहा ॥ पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इच्च बावीस परीसहा ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो अपने लखने याने जानने में आवें उसके द्वारा जो कि प्रत्यक्ष लखने में नहीं आ सकता उसको विचारे, (स्थूल) इंद्रियों के मालूम करने में जो आवे उस के द्वारा सूक्ष्म-(जो इंद्रियों के जानने में न आवे) को विचारे। इसी तरह सालंब (किसी सहारा लेने वाली चीज़) के द्वारा निरालंब (जो किसी के सहारे नहीं है) ऐसे परमात्मा को जाने—तत्व पर पहुंचने का यह मार्ग है—इसी लिये किसी साकार चिन्ह की आवश्यकता है जिस के द्वारा हम निज आत्मा व परमात्मा का ध्यान कर सकें।

धर्मध्यान साधने के मुख्य नियम।

पाठकों ! शुद्ध परमात्मा में लय हो जाने के लिये ४ प्रकार का आलम्बरूप मार्ग है जिस के द्वारा हमारा अभ्यास क्रम क्रम से निराकार आत्मा पर जम जाता है—

वे यह है—पिंडस्थ, २ पदस्थ, ३ रूपस्थ ४ रूपातीत।

अध्याय २७ वां

पिंडस्थ ध्यान मार्ग।

इस पिंडस्थ ध्यान में ५ प्रकार की धारणा है।

१ पार्थिवी २ आग्नेयी ३ आश्वासनी ४ वारुणी ५ तत्व-रूपवती।

पार्थिवी धारणा स्वरूप।

इस मध्यलोक के समान बड़ा एक समुद्र विचार कर जो कि क्षीर समुद्र के समान सफेद रंग का, ठहरा हुआ,

छतां तेने गृहस्थ आपे नहीं, ते वारे ढंढणकुमारनी पेठे चित्तमां उद्वेग करे नहीं, विषाद न करे, मुखराग फेरवे नहीं, तेमज न आपनारनुं मारुं पण चिंतवे नहीं, दुर्वचन पण बोले नहीं, अने समता धारण करीने मनमां विचारे जे, आजे नहीं मळ्युं, तो काले मळी जशे. जे वारे मळशे, ते वारे लइशुं. ए रीते अलाभपरिसह सहे.

१६ रोगपरिसह. ते पूर्वोक्त अलाभथकी आंतप्रांत भोजने करी रोगोत्पत्ति थाय, माटे अलाभ पछी सोळमो रोगपरिसह गण्यो छे. तेमां साधुने जे वारे कास, श्वास, ज्वर, अतिसारादिक रोग उपजे, ते वारे जे गछ बाहिर जिनकल्पी साधु होय, ते तो चिकित्सा करवानी इछा पण न करे, अने पोतानां कर्मनो विपाक चिंतवे, परंतु जे स्थविरकल्पी गछवासी

बिना किसी लहर उठे व किसी गर्जना के हो। इस समुद्र के बीच में एक कमल हजार पत्तों का विचार करे जो कि सुवर्ण के रंग समान चमकता हो, तथा जम्बूद्वीप के समान एक लाख योजन के व्यास (Diameter) सहित हो, इस कमल के बीच में एक बहुत पीले रंग की कर्णिका विचार करे जो कि सुमेरु पर्वत के समान हो—इस कर्णिका के ऊपर रक्खा हुआ, १ सफेद रंग का चन्द्रमा के माफिक चमकता हुआ सिंहासन विचार करें—इस सिंहासन के ऊपर अपने को बैठा हुआ इस हालत में देखें कि मैं शांत रूप बिना किसी घबड़ाहट के हूं तथा मैं अपनी आत्मा पर लगी हुई कर्मरूपी कालिमा के नाश करने के लिये यतन कर रहा हूं। इसका विचार बार बार करने से पार्थिवी धारणा का जमाव चित्त में हो जाता है। जब इस का अभ्यास पूर्णरूप में हो जाता है तब आग्नेयी धारणा का विचार किया जाता है।

आग्नेयी धारणा।

उसी ऊपर कहे हुए सिंहासन के ऊपर बैठा हुआ योगी अपने नाभिमंडल में अन्दर १ कमल १६ पांखड़ी का बहुत मनोहर ऊंचे की ओर मुंह किया हुआ विचार करे, इस कमल के हर एक पत्ते पर एक एक स्वर लिखा हुआ विचारे। यानी सोलह पत्तों पर यह १६ स्वर देखे। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। और इसी कमल की कर्णिका के बीच में (र्हँ)—चन्द्र बिन्दु और रेफ करके सहित ह—का विचार करे। यह र्हँ अक्षर बहुत चमकता हुआ

शरीरने लागे, तेथी पीडा उत्पन्न थाय, तोपण दुःख चिंतवे नहीं, समाधिनो त्याग करे नहीं.

(मलसक्कारपरिसहा के०) मलसत्कारपरिसहो, एटले मलपरिसह अने सत्कारपरिसह, तेमां मलपरिसह. ते पूर्वोक्त तृणस्पर्शे करी परसेवाने संयोगे मल उपजे, माटे तृण पछी अढारमो मलपरिसह गण्यो छे. अहींयां परसेवाना पाणीए करी साधुना शरीरने विषे रजनो कठिन मेल बंधाइ जाय, ते घणो मेल उष्ण कालना तापने संयोगे परसेवाथी भींजाइने दुर्गंधे गंधाय, तोपण ते दुर्गंधने दूर करवा सारु स्नानादिकनी इछा करे नहीं. वली एथकी क्यारे हुं छूटीश, एवी चिंतवना पण न करे.

१९ सत्कारपरिसह. ते पूर्वोक्त मलव्याप्त पुरुष कोइ पवित्र अंगवालानो सत्कार थतो देखी कांइक पोते पण सत्कारादिकनी वांछा करे, माटे

देखे। इस र्ह की रेफ से धीरे धीरे निकलती हुई धूएँ की लौ को विचारे और फिर यह धूआँ आग के फुलिंगों की सूरत में होता हुआ लौ की दशा में बढ़ता जाय और योगी अपने हृदय के बीच में नीचा मुंह किये एक आठ पाखड़ी का कमल विचारे यह आठ पाखड़ी आठ कर्म को दिखलाने वाली जाने—और यह देखे कि वह रेफ से पैदा हुई आग इस आठ कर्म रूपी आठ पत्तों के कमल को जला रही है फिर यह देखे कि यह आग इस कमल को जलाते जलाते बाहर देह के आकर त्रिकोण (Triangle) रूप हो गई। जिस में अग्नि का बीजाक्षर रेफ फैला हुआ तथा साथिये का चिन्ह बना हुआ है और जो ऊपर की ओर सोने की चमक के माफिक चमकदार लौ को निकाले हुए बिना किसी धुएं के जल रही है इस तरह यह विचारे कि यह रेफ से निकली हुई आग अन्दर मेरे कर्मों के कमल को और बाहर इस शरीर को जला रही है, और जलाते जलाते दोनों को भस्म की दशा में कर दिया है और तब यह आग अपने आप धीरे धीरे ठंढी हो बुझ गई है—इतना विचार बार बार करना सो आग्नेयी धारणा है।

आश्वासनी धारणा।

जब ऊपर कही हुई धारणा का अच्छी तरह अभ्यास हो जाय। तब वह योगी यह विचार करे कि बहुत तेज़ हवा चल रही है जिसने बादलों को फोड़ कर समुद्र के पानी को चलायमान कर, पर्वतों को कम्पाकर तमाम जगत में फैल कर खलबली पैदा कर दी है और उसी पवन ने इस

कह्युं छे, माटे हुं समस्त मनुष्योमां जाण छुं, सर्वना पूछेला प्रश्नोना उत्तर हुं आपुं छुं, एवो गर्व न करे, अने प्रज्ञाने अन्नावे मनमां उद्वेग पण न करे, ते जेमके हुं मूर्ख छुं, कांइ पण जाणतो नथी, सर्वने परान्नवनुं स्थानक छुं, कोइए पूछया थका जीवादि पदार्थनां नाम पण जाणतो नथी, एवी दीनता मनमां न करे, परंतु पूर्वकृत कर्मनुं स्वरूप चिंतवे,तो परिसह पीडे नहीं.

२१ (अन्नाण के०) अज्ञानं, एटले अज्ञान परिसह. ते पूर्वोक्त प्रज्ञानी पेरे अज्ञान पण सहन करवुं माटे प्रज्ञा पछी एकवीशमो अज्ञानपरिसह गएयो छे. वस्तुनुं तत्त्व श्रुतज्ञाने जणाय छे, तेनो जे अन्नाव ते अज्ञानपरिसह कहीए. ते आवी रीते छे—के साधु मनमां एम न जाणे, जे में अव्रतिपणुं त्यागीने व्रतिपणुं अंगीकार कीधुं छे, तोपण हुं कांइ जाणतो नथी,

योगी के जले हुए आठ कर्म रूपी कमल और शरीर की भस्म को एक झोंके में उड़ा दिया है और फिर यह हवा धीरे धीरे शांत हो गई है—इतने विचार को आश्वासनी व मारुत धारणा कहते हैं।

वारुणी धारणा।

जब आश्वासनी धारणा का अच्छी तरह अभ्यास हो जाय तब वही योगी यह विचार करे कि आकाश में मेघ छा गए। गर्जना होने लगी तथा बिजली चमकने लगी और फिर मोती के समान मोटी मोटी साफ पानी की बूंदें बराबर बरसने लगीं ऐसी कि जिस वर्षा ने बिलकुल छा लिया तथा जिसमें अर्द्ध चन्द्रमा का सा प्रकाश बन गया फिर यह देखे कि यह (ध्यानरूपी) जल मेरी आत्मा पर लगा हुआ भस्म रज को धो रहा है और आत्मा को साफ कर रहा है—इस प्रकार विचारना सो वारुणी धारणा है।

तत्वरूपवती धारणा।

जब योगी को ऊपर कही हुई वारुणी धारणा का अभ्यास हो जावे तब वह योगी विचार करे कि मेरी आत्मा सर्व कर्मों से रहित व सात धातु मयी शरीर से रहित शुद्ध होकर उसी सिंहासन पर बहुत साफ गौरवर्ण पुरुष के आकार शोभा संयुक्त विराजमान है। तथा इन्द्रादि मेरी आत्मा की पूजा कर रहे हैं और मैं अपनी निर्मल चन्द्रमा की किरण समान आत्मा ही में लीन हूँ—इतना विचार सो तत्वरूपवती धारणा है।

स्फुरवुं, तेने प्रज्ञा कहे छे, अने त्रिकाल विषयिक वस्तुना अजाणपणाने अज्ञान कहे छे.

२२ (सम्मत्तं के०) सम्यक्त्वं, सम्यक्त्वपरिसह ते पूर्वोक्त अज्ञानने लीधे सम्यक्त्वदर्शनने विषे शंका थाय, माटे अज्ञान पछी बावीशमो सम्यक्त्वपरिसह गण्यो छे. तेमां शास्त्रमां सूक्ष्म विचार सांभली तेने विषे असद्दहणा करवी नहीं, तथा देव, गुरु, अने धर्म, तेने विषे असद्दहणा करवी नहीं, अथवा शास्त्रमां देवता अने इंद्रादिक सम्यग्दृष्टि छे, एवुं सांभलीए छीए, तोपण कोइ सान्निध्यकारी थतो नथी, माटे शुं जाणीए देवता अने इंद्र छे, किंवा नथी? एवी असद्दहणा करवी नहीं, तथा अन्यदर्शनीउंनी रुद्धि वृद्ध्यादिक उन्नति तथा तपश्चर्यादिक कष्ट प्रमुख देखीने मूढदृष्टि थावुं नहीं, तेने सम्यक्त्वपरिसह कहीए. (इअ के०) एते, एटले ए प्रकारे (बावीस के०) द्वाविंशतिः, एटले बावीश (परिसहा

इस प्रकार पिंडस्थ ध्यान के अभ्यास किये जाने से यह आत्मा निजानन्द को पाता हुआ थोड़े ही समय में मोक्ष के अविनाशी सुख को पालेता है। इस पिंडस्थ ध्यान की महिमा अगाध है—इसके अभ्यास करने वाले को मंत्र, यंत्र, सिंह, सर्प, व और कोई उपद्रव अपना कुछ असर नहीं कर सकते हैं।

इस पिंडस्थ ध्यान की महिमा इन श्लोकों से जाननी चाहिये।

आर्याछन्द

इत्यविरतं सयोगी
पिंडस्थे जातनिश्चलाभ्यासं।
शिवसुख मनन्यसाध्यं
प्राप्नोत्यचिरेण कालेन॥

शार्दूलविक्रीडित

विद्यामंडलमंत्रयंत्रकुहुकू
क्रूराभिचाराः क्रियाः।
सिंहासी विषदैत्य दंति सरभा
यांत्येवनिःसारतां॥

शाकिन्यो ग्रहराक्षसप्रभृतयो
मुंचंत्यसद्वासनां,
एतद्ध्यानधनस्य सन्निधिवशा
द्भानोर्यथा कौशिकाः॥

पुरुषवेदना उदयथी स्त्रीपरिसह थाय छे, चोथो भयमोहनीयना उदयथी नैषेधिकीपरिसह थाय छे, पांचमो जुगुप्सामोहनीयना उदयथी अचेलकपरिसह थाय छे. छठो मानमोहनीयना उदयथी याचनापरिसह थाय छे, सातमो लोभमोहनीयना उदयथी सत्कार पुरस्कारपरिसह थाय छे. तथा १ क्षुधा, २ पिपासा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंश, ६ चर्या, ७ शय्या, ८ मल, ए वध, १० रोग, ११ तृणस्पर्श, ए अगीयार परिसह वेदनीय कर्मना उदयथी थाय छे, शेष कर्मोने विषे परिसहनो अवतार नथी. ए प्रकारे बावीश थया.

हवे चौद गुणठाणाने विषे परिसहोने समवतारी देखाडे छे, तेमां ए क्षुधादिक बावीशे परिसह यावत् बादरसंपराय नामे नवमा गुणठाणा सुधी थाय छे, अने सूक्ष्मसंपराय नामे दशमे गुणठाणे तो पूर्वोक्त चारित्रमोहनीयना

दोहा

या पिण्डस्थ ध्यान के माहि,
देह विषै चित आतम चाहि।
चितवै पंच धारणा धारि,
निज आधीन चित्त को पारि।

अध्याय २८ वां

पदस्थ ध्यान।

पदों को आश्रय लेकर जो ध्यान किया जाय उसको पदस्थ ध्यान कहते हैं—ध्यान करने वाला अपने योग्य स्थान तथा आसन ठीक करके यह विचार करता है कि मेरे नाभि मंडल में सोलह (१६) पत्रों का १ कमल है। इन १६ पत्रों पर १६ स्वर (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः) लिखे हुए हैं और यह स्वर इन पत्रों के ऊपर घूम रहे हैं और हृदय के बीच में इसी तरह एक दूसरा कमल २४ पत्रों का है। इस कमल के बीच में १ कर्णिका है। यह २४ पत्रे और कर्णिका इन २५ जगहों पर ककार से मकार तक २५ अक्षर लिखे हुए हैं अर्थात् (क ख ग घ ङ, च छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ द ध न, प, फ, ब, भ, म) फिर यह ध्याता अपने मुख में १ आठ पत्रों का कमल देखे इन पत्रों पर यह देखे कि य, र, ल, व, श, ष, स, ह, यह आठ अक्षर लिखे हुए हैं और घूम रहे हैं। इस तरह

प्राणीने विषे सम काले वीश परिसहनो उदय थाय अने जघन्यथी तो शीत अथवा उष्ण तथा चर्या अथवा निषद्या, ए चार मांहेला एकनोज उदय थाय, केमके ज्यां शीत होय, त्यां उष्ण न होय, अने ज्यां चर्या होय, त्यां निषद्या न होय, इत्यादिक मांहेलो एक थकां वेनो अभाव होय. ए परिसह मांहेला एक स्त्री, वीजो प्रज्ञा, त्रीजो सत्कार ए त्रण परिसह अनुकूल जाणवा, अने शेष उंगणीश परिसह प्रतिकूल जाणवा. वली स्त्री तथा सत्कार ए वे भाव शीतलपरिसह छे, अने शेष परिसह उष्ण छे. इति परिसह विचार संपूर्ण ॥

हवे दश प्रकारे यतिधर्मनुं वर्णन करे छे.

खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तव संजमे अ बोधव्वे ॥ सच्चं सोअं आकिं-
चणं च बंभं च जइधम्मो ॥ २ए ॥

सर्व (१६+३३) ४६ अक्षरों के मंत्र का विचार करना सो पदस्थ ध्यान में वर्णमातृका का ध्यान है—

सर्व श्रुतज्ञान को उत्पत्ति इन ४६ अक्षरों से होती है इस लिये इस ध्यान के बहुत दिनों के अभ्यास से ज्ञान की बढ-वारी होने लगती है यहां तक कि संयमी मुनि श्रुतज्ञान के पार पहुंच जाते हैं—अतिरिक्त इस ज्ञान वृद्धि होने के इस ध्यान के अभ्यास से शरीर के रोगों की भी शान्ति होती है।

स्वामी शुभचंद्राचार्य का वाक्य है कि—

जापाज्जयेत् क्षयमरोचकमग्निमाद्य ।
कुष्टोदरात्मकसनस्वसनादि रोगान् ॥
प्राप्नोतिवा प्रति मवाग्महती महद्भ्यः ।
पूजां परत्रच गतिं पुरुषोत्तमाप्तं ॥

भावार्थ—इस वर्णमातृका से क्षयी अग्नि की मंदता, कुष्टोदर, कास स्वास, आदि रोग जीते हैं, अच्छी वचन शक्ति प्राप्त होती है तथा उत्तम गति को पाते हैं।

इस पदस्थ ध्यान में बहुत प्रकार के पद ध्यान करने योग्य कहे गये हैं—यहां उनमें से कुछ और वर्णन किये जाते हैं—

पद—हँ-जिससे प्रयोजन अर्हंतका है। इस मन्त्र पदको अपने हृदय के वीच एक सुवर्ण मई कमल के वीच की कर्णिका में ठहरा हुआ सफेद रंग का विचार करे फिर इसी को धीरे धीरे ऊपर को उठता हुआ देखे और यह उठकर दोनों भौहों के वीच में आकर चमके, फिर मुंहरूपी कमल में जाता हुआ तालू के छेद से अमृत मई जल को वर्षाता हुआ निकले फिर

पांचमो (तव के०) तपः, एटले तपोधर्म. (य के०) च, वली प्राणातिपातादिक पांचनुं जे विरमण तथा पांच इंद्रियोनो निग्रह, चार कषायनो जय अने त्रण दंमनी निवृत्ति, ए सत्तर भेदे उठो (संजमे के०) संयमः, एटले संयमधर्म. सत्य ना-षण करवुं ते सातमो (सच्चं के०) सत्यं, एटले सत्यधर्म. तथा शरीरना हाथ पग प्रमुख पवित्र राखवा अने नात पाणी प्रमुख बेंतालीश दोष-रहित आहार लेवो, ते सर्व द्रव्यथी शौच अने आत्मानो जे शुद्ध अध्यवसाय-कषायादिके र-हित शुद्ध परिणामनी वृद्धि, ते नावशौच. अ-थवा मन, वचन अने कायाने शुद्ध राखवां, संयमने विषे निरतिचारपणुं तथा जीव अदत्त, स्वामी अदत्त, गुरु अदत्त अने तीर्थंकर अदत्त, ए चार प्रकारनी चोरीनो त्याग करवो ते आठ-मो (सोअं के०) शौचं, एटले शौचधर्म. समस्त

आखों की पलकों पर चमकता हुआ सिर के बालों में आकर ठहरे, वहा से उठकर ज्योतिष लोक में घूमता हुआ तथा चन्द्रमा की बराबरी से निकल कर सब दिशाओं में घूमता, आकाश में उछलता तथा कलकों को दूर करता हुआ मोक्ष स्थान जो सिद्ध शिला उसमें प्राप्त होता हुआ विचार कर। इतना विचार ध्यान करने वाले को कुम्भक पवन साधन करके करना चाहिये जब इसका अभ्यास पूरे तौर से हो जावे तब इस मन्त्र पदको सदा अपने नाक के अग्रभाग में व भौंहों के बीच में धारण कर ध्यान करें—

पद—ओं-जिसको प्रणव कहते हैं। यह पाच परमेष्ठी को प्रकाश करनेवाला है क्योंकि यह पद पाच परमेष्ठियों के प्रथम पाच अक्षरों ही से बना है जैसे (अ+अ+आ+उ+म्)

=(अरहन+अशरीर (सिद्ध)+आचार्य+उपाध्याय—मुनि)

यह अक्षर परमेष्ठी का सूचक है ऐसा स्वामी के इस श्लोक से भले प्रकार निदित है।

श्लोक—यस्माच्छब्दात्मकं ज्योति प्रसूतिमति निर्मल।
वाच्यवाचकसंबंधस्ते नैव परमेष्ठिन।॥

इस 'ओं' अक्षर को हृदय कमल की कर्णिका में स्वर और व्यजनो से पैदा हुआ, चन्द्रमा के रग समान सफेद रग का देख कर कुंभक पवन के द्वारा विचार करे—

इसी ओं अक्षर को यदि मूगे के समान लाल रग का विचारे तो जगत में घबडाहट पैदा हो जाय व वशीकरण का कारण है। यदि सुवर्ण रग का विचार करे तो स्तभन

गाथा ३०मीना बूटा शब्दना अर्थ.

पढमं–प्रथम.
अणिच्च–अनित्य.
असरणं–अशरण.
संसारो–संसार.
एगया–एकता, एकत्व.
य–अने.
अणत्तं–अन्यत्व.
असुइत्त–अशुचित्व.
आसव–आश्रव.
संवरो–संवर.
य–अने
तह–तेमज.
णिज्जरा–निर्जरा.
नवमी–नवमी.

विस्तारार्थः–लक्ष्मी, यौवन, कुटुंब, परिवार तथा आउखा प्रमुखने विषे जे अनित्यतानी भावना करवी, एटले संसारना सर्व पदार्थ ते कुशाग्रस्थ जलबिंदुनी परे अनित्य अस्थिर जाणे, ते (पढमं के०) प्रथमं, एटले प्रथम (अणिच्चं के०) अनित्यं, एटले अनित्य भावना. मरण आव्याना समये चक्रवर्त्ती, इंद्र अथवा तीर्थंकर प्रमुख गमे तेवो मोटो पुरुष होय, तेने पण धन कुटुंबादिक कोइनुं शरण मलतुं नथी, संसारमांहे

का काम दे. यदि काले रंग का विचारे तो द्वेष पैदा हो जाय किन्तु मोक्ष मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति के लिये सदा यह अक्षर सफेद रंग ही का देखना योग्य है।

पंच परमेष्ठी नमस्कार लक्षण मंत्र का विचार—अपने हृदय में एक सफेद चमकता हुआ आठ पत्र का कमल विचार करै उसकी वीच की कर्णिका में सात अक्षर का मंत्र अर्थात् 'णमो अरहंताणं' विचारे, और इस कमल की चार दिशा सम्बन्धी पत्रों पर क्रम से यह ४ मंत्रो को विचारेः—

१—णमोसिद्धाणं—५ अक्षर।

२—णमो आयरियाणं—७ अ०

३—णमोउवज्झायाणं—७ अ०

४—णमोलोये सव्व साहूणं—९ अ०

और इस कमल के चार विदिशा याने कोनों के पत्रों पर यह ४ मंत्र विचारे—

सम्यग्ददर्शनाय नमः १ सम्यग्ज्ञानाय नमः २ सम्यग्चारित्राय नमः ३ सम्यग्तपसे नमः ४

इस तरह ९ पदों को कमल पर स्थाप कर ध्यान करने से चित्त में वहुत पवित्रता प्राप्त होती है।

इसी तरह पंच परमेष्ठी के नमस्कार रूप नीचे लिखे यह भी मन्त्र हैं। १६ अक्षर का मन्त्र—अर्हत्सिद्धाचायोपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः;—

६ अक्षर मंत्र—अरहंत अरहंत सिद्ध।

४ अक्षर मंत्र—अरहंत—

स्वजनादिक पण अन्य छे, एवी जे भावना करवी, ते पांचमी (अणत्तं के०) अन्यत्वं, एटले अन्यत्व भावना. रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि मज्जा, वीर्य, परु तथा आंतरडां इत्यादिक अमेध्य वस्तुउंथी शरीर भरेलुं छे, अने जेनां नवे द्वारो सदा घरनी खालनी पेठे वहेतां रहे छे, ए शरीर कोइ काले पण पवित्र होतुं नथी, एवी जे भावना करवी, ते छठी (असुइत्त के०) अशुचित्वं, एटले अशुचित्व भावना. मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, तथा योग, ए पांच प्रकारना आश्रवे करीने कर्म बंधाय छे; अथवा दया दानादिके करी शुभ कर्म बंधाय छे, अने विषय कषायादिके करी अशुभ कर्म बंधाय छे, एवी जे भावना करवी ते सातमी (आसव के०) आश्रवः, एटले आश्रव भावना. जे जे संवरथकी जे जे आश्रव रोकाय, ते ते आश्रवनुं रोकवुं,

२ अक्षर मत्र—सिद्ध-

१ अक्षर मत्र —अ-

पहला पच परमेष्ठी नमस्कार रूप मत्र १०८ वार जपना वरावर है १६ अक्षर का मत्र २०० वार जपने के, यह वरावर है ६ अक्षर का मत्र ३०० वार जपने के, यह बरावर है ४ अक्षर का मत्र ८०० वार जपन के, यह वरावर है १ अक्षर का मत्र ५०० वार जपने के* ।

इत्यादिक अनेक मत्र पद हैं। इनके ध्यान करने से मन एकान्त होकर निजसरूपकी ओर दौड़ता है। इनका विशेष वर्णन शास्त्र के देखन से मालूम हो सकता है। यहाँ पर लिखने से यह लेख बहुत बढ़ जायगा। प्रयोजन यह ध्यान में रखना योग्य है कि बिना ससार सम्बन्धी राग द्वेष छोडे यह मत्र पद भी, ध्यान किये हुये लाभ और वैराग को नहीं बढाते है। अपने सूक्ष्म आत्मा की ओर अपने मन का लगा देनाही हमारा असली मतलब है। इसी लिये ही यह पदस्थ ध्यान का अभ्यास है। जैसा कि श्रीमान जयचन्द् जी ने इस अडिल्ल में कहा है—

अक्षर पद कु अर्थ रूपले ध्यान में।
जे ध्यावे इस मत्र रूप इक तान में॥
ध्यान पदस्थ जु नाम कहो मुनिराजने।
जे यामें व्है लीन लहे निज काज में॥

---

* २ अक्षर मत्र को जाप का नियम श्लोक में नहीं पाया गया।

गाथा ३१ मीना छूटा शब्दना अर्थ.

लोगसहावो–लोकस्वभाव.	अरिहा–अरिहंतादिक.
बोही–बोधि.	एआओ–ए.
दुल्लहा–दुर्लभ.	भावणाओ–भावनाओ.
धम्मस्स–धर्मना.	भावेअव्वा–भाववी.
साहगा–साधक.	पयत्तेणं–प्रयत्ने करीने.

विस्तारार्थः–केड उपर बे हाथ दइने तथा बन्ने पग पसारी उन्नेला पुरुषना जेवो जेनो सम आकार षट्‌ द्रव्यात्मक छे, पूर्व पर्याय विणसे, नवा पर्याय उत्पन्न थाय, अने द्रव्यपणे निश्चल होय, एम उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य स्वरूप चौद राजलोक छे. तेनुं नीचेनुं तलीयुं उंधा वाळेला मल्लक (कोडीया) सरखुं छे, तथा मध्य नाग झालर सरखो छे, अने उपरनो नाग मृदंग सरखो एवो शाश्वत छे, इत्यादिक जे लोकस्वरूपनी नावना करवी, ते दशमी (लोगसहावो के०) लोकस्वनावः,एटले लोकस्वनाव नावना जाणवी.

अध्याय २९वां

रूपस्थ ध्यान ।

सोरठा

सर्व विभुव जुत जानिये, ये ध्यावैं अरहंत कूं।
मन वस करि मतिमान, ते पावैं तिस भाव कूं।

अर्थात्—अपने मन में अरहंत का स्वरूप विचारना सो रूपस्थ ध्यान है—अर्थात् अरहंत भगवान के स्वरूप में अपने मन को लगाकर यह विचारना कि इन अरहंत भगवान ने ज्ञानावरणी, दर्शनावरणीं, अंतराय, मोहनी ऐसे चार घातिया कर्मों का नाशकर अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य्य प्रकट किया। केवल ज्ञान के होते ही समवशरण की रचना हुई। श्री जिनेन्द्र भगवान सिंहासन पर अंतरीक्ष में विराजमान हैं। देवादिक नाना प्रकार की भक्ति कर रहे हैं। भगवान के रागद्वेष, भूख प्यास, रोग आदि कोई भी दोष अठारह दोषों में नहीं है। भगवान शांत स्वरूप देखते ही भव्य जीवों का चित्त कमल की भांति प्रफुल्लित हो जाता है, जिनकी निरक्षरी वाणी सब सभा उपस्थित जनों के समझ में आती है, जिसको सुन कर ही जीव धर्म की ओर गमन करते हैं। इत्यादिक उनकी मूर्त्ति का ध्यान करते करते यह ध्यानी उनही से तन्मय हो जाता है अर्थात् एक मेक हो जाता है। तब मन की वृत्ति ऐसी हो जाती है कि जिस समय मन और वस्तुओं से हटाकर लीन किया उसी समय मन में श्री अरहंत की वीतराग मूर्ति ही झलकने लगती है। इसी तरह अभ्यास हो

के०) दुर्लभाः, एटले दुर्लभ छे, एवुं जे चिंतववुं, ते बारमी धर्मनी भावना. ए रीते सम्यक्दृष्टिए (पयत्तेणं के०) प्रयत्नेन, एटले उद्यमे करीने (एआउ के०) एताः, एटले ए कहेली (भावणा उ के०) भावनाः, एटले बार भावनाउ तेने प्रमाद रहित थइने शुद्ध मने करी (भावेअव्वा के०) भावितव्या, एटले भाववी तथा पांच महाव्रत मांहेली एकेका महाव्रतनी पांच पांच भावना मलीने पचीश भावना छे, ते पण एमां अंतर्भावे छे, तथा मैत्री, प्रमोद, कारुण्य अने उपेक्षा, ए चारनी साथे पूर्वोक्त बार भावना मेलवीए, ते वारे सोल भावना थाय छे. तेनो विचार उपाध्याय श्री विनयविजयजीकृत शांतसुधारस ग्रंथथकी विस्तारे जाणवो ॥ ३१ ॥

हवे पांच प्रकारनां चारित्रनुं वर्णन करे छे—

जाने से ऐसी दशा ध्यानी की हो जाती है कि स्वप्ने में भी अरहत की मूर्ति दीखने लगती है। फिर यह विचार होता है कि सर्वज्ञ भगवान की आत्मा में और मुझमें कुछ भी भेद नहीं है। जो वह है सो मैं हू, क्योंकि इस आत्मा में यह शक्ति है कि जिस विषय की ओर इसको जोडकर ध्यान किया जाय उसी विषय की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। यदि राग तथा क्रोध रूप के ध्यान का अभ्यास करे तो जगत भर में क्षोभ पैदा कर दे, और जो वीतराग होकर शुद्ध स्वरूप का ध्यान करे तो शुद्धस्वरुप हो जाय। जैसे फटिकमणि निर्मल होती है, उसके नीचे जिस रग की चीज रख दे उसी ही का रूप दिखलाई दे सकता है।

अध्याय ३०वां

रुपातीत ध्यान।

दोहा

सिद्ध निरजन कर्म बिन, मरति रहित अनत।
जे ध्यावैं परमात्मा, ते पावैं शिव सत॥

भावार्थ—सब कर्मों से दूर पुदगल की मूरत को नहीं रखने वाला अनत गुणों के भडार ऐसे सिद्ध परमात्मा का जो ध्यान है वह रूपातीत ध्यान है। इस ध्यान का विचारनेवाला यह विचारता है कि "सोहं" अर्थात् स अहं अर्थात् जो वह है सो मैं हू। अर्थात् मेरी शक्ति और सिद्ध भगवान की शक्ति एक ही है। जैसे वह सब ससार के प्रपच रुप विकल्प जालों से रहित

लाभ, ते जेना वडे थाय, ते सामायिक, तथा वली सम ते ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र, तेनो आय जे लाभ, ते ज्यां थाय छे. एटले जेणे करी ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र, ए त्रणेनी प्राप्ति थाय छे, तेने सर्व सावद्ययोगत्यागरूप, अने निरवद्ययोगसेवनरूप सामायिक कहीए. ते श्रावकने देशविरतिरूप सामायिक अने साधुने सर्व सावद्यविरतिरूप सामायिक होय. तेना बे भेद छे, तेमां भरत ऐरवतादिक दश क्षेत्रने विषे पहेला तथा छेल्ला जिनना वारामां सर्वविरति सामायिक दंडकनो उच्चार करावे, ते इत्वरिक उठामण कर्या सुधी जे रहे, ते इत्वरिक एटले स्वल्पकाल भावी सामायिक कहीए अने वचला बावीश जिनोना वारामां तथा महाविदेह क्षेत्रमां यावत्कथिक एटले सामायिक उच्चर्या पछी निरतिचारज पाले छे, तेथी तेने उठामण नहीं

राग और द्वेष से अत्यन्त दूर आनन्द रूप है, वैसे मैं हूं। जैसे वह तीन लोक अलोक का ज्ञान धारनेवाले हैं वैसा मैं हूं। उनमें मुझमें जाति अपेक्षा कोई भेद नहीं है। किन्तु भेद केवल यही है कि उनके गुण शानपर घिसे व पालिस किये हुये नगीने की भांति झलक रहे हैं, और हमारी आत्मा के गुण खान से निकले हुए पत्थर की भांति दबे हुए हैं। यदि हम तप द्वारा इसकी पालिस करेंगे तो यह भी सिद्धभगवान के सदृश हो जायगी।

यह सिद्ध भगवान ज्ञानानंद स्वभाव हैं सो मैं हूं। मै अपने को सिद्ध भगवान ही मानता हूं। वह मेरे जाति के सम्बन्धी है। उनसे मित्रता करूंगा अर्थात् उनही के गुणों में यदि मैं लीन हो जाऊंगा तो उनके गुण भले मित्र की तरह अपने में मुझे मिला लेंगे, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार सर्व संसार से मन हटाकर जो निज आत्मा को सिद्ध मान कर ध्यान करते हैं वे अभ्यास के बल से कर्मों को नाश कर उस रूप ही हो जाते हैं।

यह ४ प्रकार का धर्म ध्यान परमानंद का करनेवाला तथा शुक्ल ध्यान का पैदा करनेवाला है।

आगम मे साधारण रूप से धर्म ध्यान के ४ भेद यह भी कहे है—आज्ञा विचय - अरहंत की आज्ञा को शास्त्रद्वारा जान कर विचारना, इससे परिणाम शुभ होते है; अपाय विचय—कर्मों के दूर करने के उपाय विचारते रहना; विपाक विचय—कर्मों के फल का विचारना कि संसार मे जीव अपने पुण्य तथा पाप के वश में होकर तरह तरह के दुख सुख पाते

एक सातिचार ते मूलगुणघातीने प्रायश्चित्तरूप अने बीजो निरतिचार ते इत्वर सामायिकवंत नव दीक्षित शिष्यने छजीवणीया अध्ययन भणे पछी होय, तथा बीजा तीर्थ आश्रयी ते जेम श्री पार्श्वनाथना तीर्थथी वर्द्धमान स्वामीना तीर्थे आवी चार महाव्रतरूप धर्म त्यागीने पंच महाव्रतरूपे धर्म आदरे, तेने होय.

त्रीजा (परिहारविसुद्धीअं के०) परिहारविशुद्धिकं, एटले परिहारविशुद्धि चारित्र कहेवाय छे. तेमां (परिहार के०) तपोविशेष, तेणे करी विशुद्धि एटले कर्मनी निर्जरा जे चारीत्रने विषे होय, तेने परिहारविशुद्धिक चारित्र कहीए. ते बे भेदे छे. तेमां पहेलुं जे चार जण विवक्षित चारित्रना आसेवक ए कल्पमां प्रवर्त्तता होय, तेनुं चारित्र ते निर्विषमानसिक परिहार वैशुद्धिक चारित्र जाणवुं, अने बीजुं जे चार जण

६, संस्थान विचय—तीन लोक का स्वरूप तथा सब नरकादि का वर्णन विचारना।

यह धर्म ध्यान वीतराग परिणामों का कारण है।

ऊपर कहा हुआ पिंडस्थ पदस्थादि ध्यान का अभ्यास वीतराग रूप होकर किये जाने से हमारे में शुद्धता होती जायगी। ज्यों ज्यों शुद्धता होगी त्यों त्यों कर्मों की निर्जरा होगी।

यही शुद्धता जब अधिक हो जाती है तब शुक्ल ध्यान पैदा हो जाता है। यह शुक्ल ध्यान बढ़ते बढ़ते केवल ज्ञान का पैदा कर देता है। इस ध्यान के फल से यह जीव कर्मों के बोझे से हलका होता हुआ स्वर्ग भोगभूमि आदि गतियों में पहुच जाता है। फिर धीरे धीरे तो मोक्ष के फल को प्राप्त करता है, जैसा कहा है—सवै० २३ —

ज्ञान समुद्र तहां सुख नीर पदारथ प्रकृति रत्न विचारो।
राग विराग निमोह कुजन्तु मलीन करे तिनि दूर विडारो॥
शक्ति सम्हारि करो अवगाहन निर्मल होय सुनरत्व उधारो।
ठानि क्रिया निज नन्द पुरु भाजन भोगत मोक्ष पधारो॥१५

इस लिये संसारी जीवों को अपने लगे हुए कर्मों को दूर करने के लिये १२ प्रकार तप के द्वारा कर्म की निर्जरा करनी चाहिये। जो इस उत्तम उपाय को पहचान कर फिर भी ढील करते है उनके लिये फिर सुधार का मौका मिलना एक कठिन पदार्थ है, क्योंकि वह तीव्र मानसिक शक्ति जो कि मनुष्य गति में प्राप्त होती है, और किसी भी मनुष्य गति से हीन तिर्यंचादि गतियों में नहीं प्राप्त होती है। देव गति में इन्द्रियों को लुभानेवाले कारणों के विद्यमान होने से यह जीव उन्हीं में मुग्ध हो जाता है। और चूंकि मनुष्य जन्म उत्तम

कल्प स्थितपणे नित्य करे. एम ठ महीना तप करे, ते पठी फरी चार तपस्याना करनार, ते वैयावच्चीया थाय, अने वैयावच्च करनारा तपीया थाय, ते पण ठ मास लगे तप करे, ते पूर्ण थया पठी जे गुरु थया होय, ते ठ महीना तप करे, ते वारे ते आठ मांहेलो एक गुरु थाय, शेष बीजा वैयावच्च करे. एम अढार महीना सुधी तप संपूर्ण करी, पठी जिनकल्प आदरे, अथवा गछमां पण आवे. तप जे प्रथम संघयणी, पूर्वधर लब्धिवंत होय, ते प्रचुर कर्मना परिपाकने अर्थे अंगीकार करे. ए चारित्र पांच भरत, पांच ऐरवतमां पहेला अने ठेल्ला तीर्थंकरना तीर्थमां होय. ए परिहारविशुद्धि चारित्रनां २० द्वार ठे. ते नीचे प्रमाणे—क्षेत्र १, काळ २, चारित्र ३, तीर्थ ४, पर्याय ५, आगम ६, वेद ७, कल्प ७, लिंग ए, लेश्या १०, ध्यान ११, गण

समागम अनंत जन्मों के भीतर घूमते रहते हुए किसी कारण विशेष से प्राप्त हो जाय तो हो जाता है। ऐसे जन्म पाने पर फिर भी जो उन कर्मों के नाश का उपाय नहीं करते हैं कि जिन कर्मों के कारण यह जीव सदा काल दुःख पाता रहा तथा यहां भी दुःख पा रहा है, तो हम तो उस व्यक्ति को विचारशून्य के सिवाय कुछ भी नहीं कह सकते हैं।

इस लिये जो इस नर देही को सफल करना चाहें उन्हें आज कल का मुंह नही ताकना चाहिये, किन्तु सच्चे हृदय से अपनी इस आज कल करने में नाश हो जानेवाली पर्याय से अपनी आत्मा का भला कर लेना चाहिये! कल को यह न रही तो पछताना होगा कि हाय, हम चाहते थे कि इस नर देही मे अपने पूर्व बाँधे हुए कर्मों की निर्जरा करें। हाय! अब क्या करें, अब तो यमराज के मुख मे चले जा रहे है।

अध्याय ३१वां

मोक्षतत्व।

सातवां तत्व मोक्ष है। जब इस जीव से चार घातिया कर्मों के पुद्गल भिन्न हो जाते है तब यह जीव जीवन्मुक्त हो जाता है अर्थात् अरहंत होकर आत्मीक सुख भोगता है। इस दशा में केवल ४ अघातिया कर्म जली हुई रस्सी की भांति बाकी रहते हैं, जिनका फल उस अरहंत आत्मा के आनन्द मे किसी प्रकार बाधक नही होता।

यह आयु, नाम, गोत्र, वेदनी रूप चार कर्म भी जब बिलकुल छूट जाते हैं तब यह आत्मा शरीर से निकलते ही

उपशमश्रेणीवालो जे होय, ते उपशमावे, तथा क्षपकश्रेणीवालो होय, ते खपावे. ते संख्याता खंड मांहेलो जे वारे बेह्लो खंड रहे, तेना असंख्याता सूक्ष्म खंड करीने दशमे गुणठाणे उदयमां आणी नोगवीने उपशमावे, अथवा क्षपक होय, ते खपावे, ते दशमा गुणठाणानुं नाम सूक्ष्मसंपराय, अने चारित्रनुं नाम पण सूक्ष्मसंपराय जाणवुं. ए चारित्र बे नेदे बे, एक श्रेणी चढताने विशुद्ध मानसिक होय, बीजुं उपशमश्रेणीथी पडताने संक्लिष्ट मानसिक जाणवुं. औपशमिकने ए चारित्र आखा संसारमां पांच वार अने एक नवमां बे वार आवे ॥ ३२ ॥

तत्तो अ अहक्खायं, खायं सवंमि जी-
वलोगंमि ॥ जं चरिऊण सुविहिआ,
वच्चंति अयरामरं गणं ॥ ३३ ॥

एक समय में सीधा सिद्ध लोक को पहुच जाता है। जैसे एरंड का बीज फली के फूटते ही ऊपर को जाता है, व अग्नि की लव सीधी ऊपर को उठ जाती है। और यह सिद्धात्मा लोक के ऊपर उसी स्थान तक आता है जहा तक धर्म द्रव्य है। उस सिद्ध लोक में अपने अरहंत के शरीर से कुछ कम चैतन्य रूप शरीर को धारता हुआ अपने ज्ञान में अनंत काल तक मगन रहता है। फिर उस सिद्धात्मा को ससार में आकर जन्म मरण करने की आवश्यकता नहीं रहती। यह मोक्ष तत्व है।

इस प्रकार इन सात तत्वों का स्वरूप जान कर जो अपना विश्वास निर्मल करते हैं वे सम्यक् दर्शन को पाते हैं और उसी समय उनका ज्ञान सम्यक् ज्ञान रूप और आचरण सम्यक् चारित्र रूप हो जाता है।

जिसके जीवात्मा व उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले पुद्गल आदि का श्रद्धान भले प्रकार हो गया है, वह प्राणी नियम न होने पर भी जुआ खेलना आदि सात व्यसन जो कि प्रत्यक्ष ही में दुःख के कारण हैं कदापि नहीं करेगा। सत्य वचन बोलने का नियम न होने पर भी मुख से कभी पर को दुःखदाई ऐसे गूढ़ वचन न निकालेगा, क्योंकि उसके पहले ही आश्रव तत्व और उसके कारणों का श्रद्धान हो गया है। वह जानता है पर को असाता पहुचाने से असाता वेदनी कर्म बाधना पड़ेगा जिसका फल मुझ ही को कडुवा मिलेगा। इसी लिये सम्यक्दृष्टि होना धर्मिष्ट होने की जड़ पक्की करना है। बिना सम्यक् रूप हिंसा न करने, झूठ न बोलने आदि के नियम समय पाकर छूट जा सकते हैं।

वलीने तेरमे अने चौदमे गुणठाणे होय, ते कैवलिक जाणवुं. ए चारित्र (सव्वंमि के०) सर्वस्मिन्, एटले समस्त एवा (जीवलोगंमि के०) जीवलोके, एटले जीवलोकने विषे केवुं छे? तो के (खायं के०) ख्यातं, एटले प्रसिद्ध छे. हवे ते केवी रीते प्रसिद्ध छे? ते कहे छे. (जं के०) यद्, एटले जे चारित्रने (चरिऊण के०) चरित्वा, एटले आचरीने (सुविहिआ के०) सुविहिताः, एटले सुविहित साधु, ते (अयरामरं ठाणं के०) अजरामरं स्थानं एटले अजरामर स्थानकने (वच्चंति के०) व्रजंति, एटले पामे छे, एटले जन्म, जरा अने मरण तेणे रहित एवुं जे मोक्षरूप स्थानक, तेने पामे छे ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीसंवरतत्त्वविचारः समाप्तः ॥ ६ ॥

इन सात तत्वों का ज्ञान बढ़ाने के लिये हमें नित्य शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिये, ताकि हमे इनका ज्ञान और भी बढ़ जाय। और उसीके साथ अपने योग्य आचरण को भी धारणा हमारा कर्तव्य है।

आचरण के नियम मुनि और श्रावक के लिये भिन्न भिन्न है—अहिंसा, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य्य और परिग्रह त्याग, इन पांच व्रतों को पूरे तौर से पालना महाव्रत के धारक मुनियों का काम है। और इन्हीं ५ व्रतों को थोड़ा पालना श्रावक का कर्तव्य है। जैसे श्रावक स्थूल (त्रस) हिंसा न करके सूक्ष्म-हिंसा अर्थात् एकेन्द्री जीवों की बाधा नहीं बचा सकता है। सत्य बोलने मे उस असत्य मे दोष नही समझता जिससे किसी दूसरे के प्राण बचें, चोरी न करने मे, सर्व स्थानो मे रहनेवाले जल व मिट्टी की चोरी नही बचाता है। मुनि विना दिया जल भी नहीं लेते। ब्रह्मचर्य में श्रावको को स्वस्त्री संतोष नाम व्रत होता है। मुनि स्त्री मात्र के त्यागी है। परिग्रह में श्रावक अपने वर्तने योग्य सामान की गिनती कर लेता है जब कि मुनि के गिनती न होकर सर्व परिग्रह का त्याग होता है।

इसीके अंतर्गत और भी कई भेद दोनों सम्प्रदाय के आचरण विषय मे है। इनका विशेष वर्णन इस जिनेन्द्रमत दर्पण की तीसरी जिल्द मे समय पाकर किया जावेगा ॥

॥ समाप्तम् ॥

पण निर्जरा छे, ते कहे छे—पुद्गलकर्मनुं जे सा-
डवुं, ते द्रव्यनिर्जरा अने आत्माना शुद्ध परि-
णामे करी कर्मनी स्थिति जे पोतानी मेळे पाके
अथवा बार प्रकारनां तपे करी नीरस कर्या
एवां जे कर्मपरमाणु, ते जेनाथी सडे, एवा जे
आत्मानां परिणाम थाय, ते भावनिर्जरा जा-
णवी. तथा तिर्यंचादिकनी पेठे इच्छा विना कष्ट
सहन करतां कर्मपुद्गलनुं जे क्षपण थाय छे, तेने
द्रव्यनिर्जरा अथवा अकामनिर्जरा कहीए; अने
बार प्रकारनां तपे करी संयमी थकां कष्ट सहन
कर्याथी जे कर्मपरमाणुओनुं क्षपण करवुं, अथवा
साडवुं, तेने भावनिर्जरा अथवा सकाम निर्जरा
कहीए. ए बेन्ने निर्जरामां भावनिर्जरा अथवा
सकामनिर्जरा श्रेष्ठ छे. ते (णिज्जरा के०) निर्ज-
रा, एटले निर्जरातत्त्व (बारसविहं के०) द्वादश-
विधं, एटले बार प्रकारनां (तवो के०) तपः, एटले

भारत-जैन-महामण्डल के उद्देश्य ।

(१) जैन समाज की भिन्न भिन्न आम्नायों तथा जातियों में सामाजिक तथा लौकिक ऐक्यता और मैत्री भाव का प्रचार करना ।

(२) जैन समाज की प्रचलित कुरीतियों का सुधार कर उत्तमोत्तम रीतियों का प्रचार करना ।

(३) जीव दया का प्रचार करना ।

(४) स्त्रीशिक्षा का प्रचार कर जैन स्त्री समाज की मानसिक, शारीरिक तथा लौकिक उन्नति करनी ।

(५) जैन जाति में लौकिक (औद्योगिक आदि) तथा धार्मिक विद्या का प्रचार करना, और सभा के सभासदों में जैन शास्त्रों के अध्ययन का प्रचार करना ।

(६) जैन शास्त्रों का उद्धार करना, तथा उन्हें प्रकाश करके मूढ़त्व का दूर करना, और तीर्थंकरों के कहे हुए सत्य मार्ग का प्रकाश तथा प्रचार करना ।

(७) जैन जाति में व्यापार की उन्नति करना ॥

क्षेमचंद्रदास,
जनरल सेक्रेटरी, भारत जैन महामण्डल,
ललितपुर ।

——:०:——

करीने बंधतत्त्व सम्यक्दृष्टि जीवे (नायव्वो के०) ज्ञातव्यः, एटले जाणवुं ॥ ३४ ॥

अहीं कर्मना चार प्रकारना बंधमां संक्षेपथी मोदकनुं शास्त्रप्रसिद्ध द्रष्टांत आ प्रमाणे छे- जेम शुंठ्यादि द्रव्यना संयोगथी कोइ लाडुनो स्वभाव वातादिकने दूर करवानो होय छे, तेम आठ कर्मना स्वभाव जुदा जुदा होय छे, एटले जे कर्मनो जे स्वभाव, ते स्वभावसहितज ते कर्म बंधाय, ते प्रकृतिबंध कहेवाय छे. तथा जेम कोइ मोदक अमुक मुदत सुधी सारो रहे, त्यार पछी विकार पामे, तेम कोइक कर्म आत्मानी साथे अमुक काळ सुधी संबंधथी बंधाइ रहे, पछी आत्माथी अलग थइ ते ते स्वभाव रहित थइ जाय, ते प्रमाणे कर्मने कर्मपणे रहेवानो काळ पण बंधमां समयेज नियमित थाय छे. माटे कर्मना काळनो नियम ते स्थितिबंध

अणसण-मूणोअरिया, वित्तीसंखे-
वणं रसच्चाओ ॥ कायकिलेसो संली,-
णया य बज्जो तवो होई ॥ ३५ ॥

गाथा ३५ मीना छूटा शब्दना अर्थ.

अणसणं—अनशन.	सलीणया—संलीनता.
ऊणोअरिया—ऊणोदरिका.	य—अने.
वितीसंखेवणं—वृत्तिसंक्षेप.	बज्जो—बाह्य.
रसच्चाओ—रसत्याग.	तवो—तप.
कायकिलसो—कायक्लेश.	होई—छे.

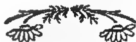
विस्तारार्थः—पहेलुं (अणसणं के०) अनशनं, एटले अनशन तप, ते आहारनो त्याग करवो, तेना बे भेद छे—एक इत्वर, अने बीजो यावत्कथिक. तेमां छेल्ला तीर्थंकरने वारे छठ अठमादिकथी मांमीने छमासी पर्यंत, अनेक विधिए जे नियमयुक्त अशननो त्याग करवो, ते इत्वर अनशन कहीए, अने यावत्कथिक जे जावज्जीव

जब लौं नहिं भारत की ललना श्रुति शास्त्र पुराणहिं पाठ करेंगी ।
तबलौं नहिं आरत भारत की यह हालत हाय कभी सुधरेगी ॥



बालिका-विनय

रचयित्री—एक जैनमहिला ।



प्रकाशक,
कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन,
आरा ।

प्रथम बार १०००] सन १९१२ [मूल्य ~)

अने त्यार पछी फरी महाव्रतनो जे आरोप करवो, अथवा करेला दोषनो जे तपरूप दंड आप्यो छे, ते ज्यां सुधी न करे त्यां सुधी महाव्रतमां न स्थापवो, ते नवमुं अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त. साध्वी अथवा राजानी राणी प्रमुख स्त्रीने विषे संजोग थइ गयाथी बार वर्ष पर्यंत क्रिया सहित अने लिंगादिक नेदे रहित तीर्थ प्रनावना करी, फरी दीक्षा लइने जे गछमां आववुं, ते दशमुं पारांचित प्रायश्चित्त. ए दश प्रकारे प्रायश्चित्त तप कह्युं.

बीजुं (विणउ के०) विनयः, एटले विनय तप, एटले गुणवंतादिकनी नक्ति करवी, तथा अशातना टालवी, इत्यादिक एना सात नेद छे.

तेमां प्रथम ज्ञाननो विनय पांच नेदे छे. त्यां मत्यादि पांच प्रकारनां ज्ञाननी बाह्यथी सेवा करवी, ते पहेलो नक्ति विनय. पांच ज्ञाननुं अंतरंग

Printed at the Nursingh Press by
[illegible]NPRATAP BHARGAY.
201, *Harrison Road, Calcutta.*

१ सत्कार एटले स्तवन तथा वंदनादिक करवां. २ अभ्युत्थान एटले आसनथी उठवुं. ३ सन्मान एटले वस्त्र तथा पात्रादिके करी पूजा करवी. ४ आसन परिग्रहण एटले अति आदरे करी आसन लावी आपीने स्वामी ! आ आसन उपर वेसो, एम मुखथी कहेवुं. तेमज ५ आसननुं प्रदान एटले मात्र मुखथकी कहेवुं एटलुंज नहीं, पण ते प्रमाणे आसन देवुं. ६ कृतिकर्म एटले वंदना करवी. ए साधु प्रमुखनी अपेक्षाए जाणवु. ७ अंजलिग्रहण एटले हाथ जोमवा. ८ आवतानी सामे जवुं, तेमज ९ वेठेलानी (पर्युपासना) सेवा करवी. १० जनाराने वोलाववा जवुं. ए दश टालीने इत्यादिरूप पहेलो विनय थाय छे.
दश प्रकारे शुश्रूषा
बीजा अनाशातना विनयना विनय पिस्तालीश भेद
, ते कहे छे–१ ऋषभादिक चोवीश तीर्थंकरो के
तथा २ जिनप्ररूपित धर्म, ३ धर्माचार्य अथवा

निवेदन।

बाल अवस्था में सुता पढ़ैं चतुर धरि ध्यान।
तो पावैं यह जगत में विद्या कीर्ति धन मान॥
शुभ पुस्तक पढ़ती रहो आप अपने प्रान।
सुता पढ़ाए शुभ हित किया करो अनुमान॥

सुज्ञ पुत्रियो!

यह तुम्हारी चीज तुम्हारे लिये है। इस पुस्तिका के प्रत्येक पदमें तुम्हारे हृदय के भाव हैं। इसी के अनुसार चलने से संसार में तुम गौरव और सुखसम्पन्न होओगी। एक २ पद को याद करो और अपने प्यारे कुटुम्बियोंको सुनाया करो। एक दिन तुम्हारी मनोकामना अवश्यही सिद्ध होगी और तुम भारतमाता की दुलारी पुत्रियों में गिनी जाओगी।

तुम्हारे उच्च शिक्षा ग्रहण करनेके लिये "विद्यामन्दिर" अवश्य बनेगी—श्रीजिनवाणी माताका सतत ध्यान करो—सब बेड़ा पार है।

आरा
१५-७-११

तुम्हारा शुभचिन्तक
देवेन्द्र।

त्रीजो चारित्रनो विनय पांच भेदे छे, ते कहे छे—सामायिक प्रमुख पांच चारित्रोनी सद्दहणा करवी, तेमज कायाए करी फरसवुं, आदरवुं, पालवुं, तेमज भव्य प्राणीनी आगल प्ररूपणा करवी.

त्रण प्रकारना योगनो विनय कहे छे—आचार्यादिकोनो सर्व कालने विषे मन, वचन तथा कायाए करी विनय करवो. एटले मने करी माठुं चिंतववुं नहीं, वचने करी माठुं बोलवुं नहीं, तथा कायाए करी माठी प्रवृत्ति करवी नहीं. तेवी रीतेज ते आचार्यादिकने विषे मन, वचन अने कायाने शुभ प्रवृत्तिमां उदीरवां, प्रवर्त्ताववां. ए रीते त्रण प्रकारे योगनो विनय ते पूर्वोक्त त्रण विनयनी साथे मेलतां छ भेद विनयना थया.

सातमो लोकोपचार विनय सात भेदे छे, ते कहे छे—गुरु प्रमुख जे श्रेष्ठ पुरुष होय, तेमना [illegible] समीपे वसवुं, २ आराधवा योग्य पुरुषनी इच्छाए

अहा ! कैसी विदूषी थी भारत की नारी । पिया की पियारी पिता की दुलारी ॥ जो सन्तान अपनी सुधारो बढ़ाओ । तो सारे ही तुम अपनी पुत्री पढ़ाओ ॥ जो कन्या को अपनी पढ़ाओगे ना । चली जायगी तब नाक से अजिना—

भगवद्वन्दना ।

हे जगवन्धु जगतहितकर्ता श्री जिन हम पर दया करो ।
ज्ञान सुधा वर्षा कर स्वामी विद्या दे सब दुःख हरो ॥१॥
केवल ज्ञान ज्योतिसे तुमने जगत चराचर देख लिया ।
सबके स्वामी अन्तर यामी, हमको सद उपदेश दिया ॥२॥
हम सब नमन करें तव पदको धन्य धन्य गुण आगर हो ।
भव-ज्वाला से जले जीवको, शान्ति-सुधाके सागर हो ॥३॥
करने से गुण-गान तुम्हारा, पाप शाप सन्ताप भगे ।
होकर इष्ट मनोरथ सिद्धि, हृदय माँहि सत ज्ञान जगे ॥४॥
तव शासन पर चलें सदा हम, करुणाकर उपकार करो ।
जैन-बालिका-गण के स्वामी, दे विद्या उद्धार करो ॥५॥

सात विषये करी विनय करीए. तेथी ए चोथुं विनय तप पण सात प्रकारनुं कह्युं छे.

त्रीजुं (वेयावच्चं के०) वैयावृत्यं, एटले वैयावृत्य तप, ते आचार्यादिकने आहार, पाणी प्रमुख संपादनारूप उपष्टंभ (आधार) देइए, ते दश भेदे छे. यथा—"आयरिय उवज्झाए, थेर तवस्सी गिलाण सेहाणं ॥ साहम्मी कुल गण संघ, संगयं तमिह कायव्वं ॥ १ ॥" ... (आयरिय) आचार्य ते जेनी पासेथी धर्म प्राप्त थाय छे ते. (उवज्झाय) उपाध्याय, ते जे विद्याभ्यास करावे छे ते. (थेर) स्थविर, ते ज्ञान, पर्याय तथा वय, ए त्रण प्रकारे. (तवस्सी) तपस्वी ते अठम प्रमुख तप करनार होय ते. (गिलाण) ग्लान, एटले रोगी होय ते. (सेहाण) शिष्य, नवो दीक्षा लीधेलो होय ते. साहम्मी, ते समान धर्मवान होय ते. कुल, ते चंद्रादिक कुलवान् होय ते. गण, ते

हे जगवन्धु जगत हित कर्ता, श्री जिन हम पर दया करो।
ज्ञान सुधा वर्षा कर स्वामी, विद्या दे सब दुःख हरो ॥६॥

जिनवाणी माताकी स्तुति।

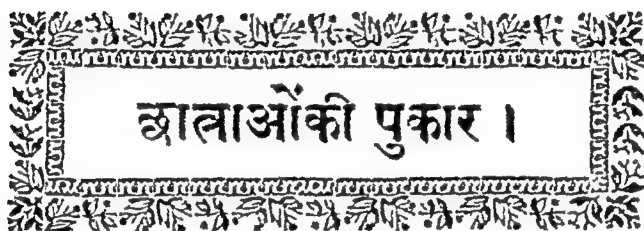
जिनवाणी जगत जननि मात ज्ञान दीजिये ॥
पकड़ी है शरण तेरी मात रक्षा कीजिये।
संसार में अनादि से वियोग होरही।
परदा पड़ा है मोहका अब खींच लीजिये ॥
हे मात तव समीप मुझे लज्जा आती है।
कारण विमल भावसे अब क्षमा कीजिये ॥
ढाई हजार वर्ष से स्वामी ने तजी थी।
सुपुत्र भी सभी गये, किमधैर्य दीजिये।
हम सोलह लाख पुत्र पुत्रियाँ तय्यार हैं।
कृतघ्न भूले मात को धिक्कार दीजिये।
जो द्वादशांग में सजी थी स्वामी सामने ॥
वह जीर्ण भूमि पै पड़ी हा! शोक कीजिये ॥
सब अंग छीजे मातके प्राणों से दुखी है।
अब भी कुपुत्रों! मिलके ज़रा सेवा कीजिये।
शुभ भाग्य का उदय हमारे चमक उठा है।

ते. (धम्मकहा के०) धर्मकथा, ते धर्मसंबंधी क-था कहेवी अथवा धर्मोपदेश करवा ते. ए प्र-कारे (सज्झाओ होइ पंचहा के०) स्वाध्यायो न-वति पंचधा, एटले स्वाध्याय तप पांच नेदे थाय छे, ते कह्युं.

पांचमुं (झाणं के०) ध्यानं, एटले ध्यान, ते मननुं जे एकाग्रताए अवलंबन ते ध्यान तप, ते चार नेदे छे.

तेमां पहेलुं आर्त्तध्यान, एना वली चार नेद छे—भ्राता, मित्र, स्वजन, माता, पिता, सुहृद, नृ-त्य तथा पशु प्रमुख जे पोताने इष्ट एटले अति प्रिय होय तेमनुं, तथा शातावेदनीय, तेउनो वियोग थयाथी जे चिंता, शोक अथवा विलाप करवो, ते पहेलुं इष्टवियोग आर्त्तध्यान. मनने अणगमता जे विषय, अने तेना आधारनूत जे रासन कोढी प्रमुख अशुचनो संयोग थयाथी

श्रीमात के प्राणोंको रक्षा आज कीजिये।
धन्य धन्य घड़ी आजको सेवा में लगी है।
अब पुत्र पुत्रियों पै मात कृपा कीजिये॥
अब हृष्टपुष्ट होके मात दया भाव से।
संसार भ्रमण तोड़के उद्धार कीजिये॥


बालाओंकी पुकार।

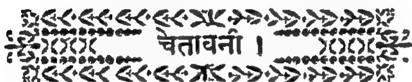
कव्वाली।

सुनो तुम जैन धर्मज्ञो, यही विनती हमारी है।
सुविद्या दान हम मांगें, रहो मरज़ी तुम्हारी है॥ टेक॥
जो धार्मिक और लौकिक, काम दुनियां के रहें कुछभी।
विना विद्या के सब फीके, जगत में धन य भारी है॥ १॥
इसी धन से धनी नामी, हुए जरमन औ जापानी।
यह लौकिक का नमूना है, धरम की बात न्यारी है॥ २॥
जैन जाती में फैलाना, जो चाहो सुःखदा विद्या।
बनाओ शिच्छिता हमको, तभी कुछ सुख निशानी है॥ ३॥
भवन विद्या के जितने है, करो उनकी सभी सेवा।
दरव दिल खोल कर देदो. चपल कमला-कुमारी है॥ ४॥

जे अध्यवसाय ते बीजुं मृषानुबंधी रौद्रध्यान. क्रोध तथा लोभादिकने वश थइने बीजानुं द्रव्य हरण करवानी जे चिंतवना करवी, ते त्रीजुं स्तेयानुबंधी रौद्रध्यान. शब्दादिक विषयनुं साधनभूत जे धन, तेना रक्षण करवाने अर्थे सर्व स्वसंबंधीउने विषे दुष्ट चिंतवन करवुं ते, जेमके जो आ सर्व जीवतां हशे, तो मारुं धन लइ लेशे, माटे जो ते मरी जाय, तो सारुं थाय, एवी जे दुष्ट चिंतवना करवी, ते चोथुं संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान कहीए. ए आर्त्त अने रौद्र बेहु ध्यान संसार संबंधी फलनां देनारां छे.

त्रीजा धर्मध्यानना चार भेद छे—ज्ञान, दर्शन चारित्र तथा वैराग्यभावनाए करी वीतरागनां वचन उपर जे सद्दहणा, एटले श्रद्धा न राखवी. आपणी मति तुछ छे, पण केवलिभाषित सर्व सत्यज छे, एवी जे चिंतवना करवी, ते पहेलुं

बनाओ ऐसे कन्यालय जहाँ हो उच्च शिक्षाये ।
करोड़ों का करो चन्दा नहीं कुछ तुममे भारी है ॥ ५ ॥
हमें उम्मेद है पूरी, करोगे अब उधारा तुम ।
नवीनाश्रम को कुछ देना, तुम्हारा फर्ज भारी है ॥ ६ ॥
सुनो तुम जैन धर्मघो, यही विनती हमारी है ।
सुविद्या दान हम मांगे, रहो मरजी तुम्हारी है ॥ ७ ॥



चेतावनी ।

जागोरी जैन बहिनो ' कुछतो भला कमाओ ।
मानुष जनम को पाके मत व्यर्थ हो गंवाओ ॥ १ ॥
चौरासी पार करके पायी कहीं ये बारी ।
भाग्यों से मिल गया है सार्थक इसे बनाओ ॥ २ ॥
कुछ पाप के उदय से नारी का जन्म पाया ।
उसको सफल दिल कर सब भांति से बनाओ ॥३॥
प्राचीन जैनियों का साहस घटाया तुमने ।
इस अब जाति को तुम नीचा न कर दिखाओ ॥४॥
किस नींद सो रही हो, निज धन को खो रही हो ।
अज्ञान को हटा के मन ज्ञानधन जगाओ ॥ ५ ॥

थक्त्व वितर्क अविचार शुक्लध्यान. ए ध्यान नां-गिक श्रुतपाठीने त्रणे योग छतां थाय छे. ए प्रथम भेद.

२ उत्पादादिक एक पर्याये करी निर्वात स्थानकना दीपकनी पेठे निष्प्रकंप चित्तवान् थइने पूर्वलाथी विपरीत रहेवुं, ते बीजुं एकत्वपृथक्त्व अविचार शुक्लध्यान. ए ध्यान गमे ते एक योग थकां थाय छे. ए बे ध्यान यद्यपि पूर्वगत श्रुतावलंबीने होय छे, तथापि मरुदेव्यादिकने श्रुत विना पण थयां हतां, ए विशेषता छे.

३ तेरमा गुणठाणाने अंते मनोयोग तथा वचनयोग रुंध्या पछी काययोग रुंधतां होय, ते त्रीजुं सूक्ष्मक्रिया अनिवृत्ति नामे शुक्लध्यान. आ ध्यान एकला मात्र काययोगेज थाय छे.

४ शैलेशीगुणठाणे गये थके क्रियाविच्छेद थ-इने जे पाछुं पडवुं नहीं, ते चोथुं व्युच्छिन्नक्रिया

माता पिता कुटुम्बी, सम्बन्धी लोग जितने।
भरतार से भी बिनती, कर जोड़ कर सुनाओ ॥ ६ ॥
विद्या दो हमको माता, शिक्षा दो हमको भाई।
बिन ज्ञान हमको मूर्खा, मत जानकर बनाओ ॥ ७ ॥
निज स्वार्थ में कमीका, कुछ डर न दिल में करना।
कन्या भी होवे विदुषी, यह ख्याल दिल में लाओ ॥ ८ ॥
धर्मज्ञ विदुषी होकर, हम भी करेंगी सेवा।
संसार-यात्री पद को, जल्दी सफल बनाओ ॥ ९ ॥
इस भाँति बिनती करके, चेतोरी जैन बहिनों।
होवे सफल मनोरथ, जिन वाणी शरण आओ ॥ १० ॥
जागोरी जैन बहिनो कुछ तो भला कमाओ।
मानुष जन्म को पाके वृथा ही मत गवाँओ ॥ ११ ॥



बहिनों उठो।

दोहा।

विद्या बिनु सोहे नहीं, छवि, यौवन, कुल, मूल।
रहित सुगन्ध सजे न वन, जैसे सेमर-फूल॥

३ कल्पविशेषे उपधिनो जे त्याग करवो, ते त्री-
जो उपध्युत्सर्ग; ४ अधिक अशनादिक लेवानो
त्याग करवो तथा अशुद्ध नात पाणी एटले अ-
शनादिक चारने लेवानो जे त्याग करवो, ते
चोथो अशुद्धनत्तपाण उत्सर्ग. ए चार प्रकारे
द्रव्यथी उत्सर्ग जाणवो. उत्सर्ग एटले त्याग क-
रवो, ए अर्थ समजवो.

हवे नावोत्सर्गना त्रण नेद कहे ठे. १ क्रो-
धादिक चारनो जे त्याग करवो, ते पहेलो कषा-
योत्सर्ग. २ नरकादिकना नवनुं आउखुं बांधवा-
नां कारण, जे मिथ्यात्वादिक ठे, तेनो जे त्याग,
ते बीजो नवोत्सर्ग, अर्थात् संसारोत्सर्ग. ३ बं-
धना हेतु जे ज्ञानावरणीयादिक कर्म ज्ञानप्र-
त्यनीकपणादिक ठे, तेनो जे त्याग, तेने त्रीजो
कर्मउत्सर्ग कहीए. ए नावथी उत्सर्ग त्रण नेदे
कह्यो, एथी कर्मनी निर्जरा थाय ठे. ए रीते ए
ठ प्रकारे (अभितरउ तवो के०) आभ्यंतर तप;

गज़ल ।

उठो बहनों पढो विद्या यही शिक्षा हमारी है ।
बिना विद्याके पढनेसे दशा बिगडी तुम्हारी है ॥
तुम्हारा नाम शूद्रोंमें गिना जाने लगा बहनों ।
बनी है पैरकी जूती वही जो मूर्ख नारी है ॥
तुम्हारा मान भी आदर रहा नहीं शेष कुछ देखो ।
यही कारण है इसका कि अविद्या तुमको प्यारी है ॥
तुम्हींको कहते थे लक्ष्मी तुम्हारा नाम है देवी ।
तुम्हारे मूर्ख होने से हुआ भारत दुखारी है ॥
अविद्या विषको तज करके न जब तक तुम पढो विद्या ।
तभी तक यह दशा बिगडी हमारी भी तुम्हारी है ॥
नहीं विद्यासे बढके है कोई धन रूप इस जगमें ।
सिखावे धर्मका चिन्तन वही विद्या तुम्हारी है ॥
सदा चित दे पढो विद्या पढाओ अन्य बहिनों को ।
करो परचार शिक्षाका यही विनती हमारी है ॥
करो तुम प्रीति शिक्षा से, यही शिक्षा हमारी है ।
उठो बहनों ! पढो विद्या, इसी में लाभ भारी है ॥



विस्तारार्थः—अहींयां चार प्रकारनो बंध, ते मोदकने दृष्टांते जाणवो. जेम सुंठ प्रमुख पदार्थ नाखीने मोदक कर्यो होय, ते वायुरोगनुं हरण करे छे; जीरुं प्रमुख टाढी वस्तु नाखीने मोदक कर्यो होय, ते पित्तरोगनुं हरण करे छे; इत्यादि- क जे द्रव्यना संयोगे करी मोदक नीपन्यो होय, ते मोदक द्रव्यगुणानुसारे वात, पित्त तथा क- फादिक रोगोनुं हरण करे छे, ते तेनो स्वभाव जाणवो. तेम ज्ञानावरणीय कर्मनो ज्ञान अप- हारक स्वभाव छे, सामान्य उपयोगरूप जे दर्शन, तेने नाश करवानो दर्शनावरणीय कर्मनो स्वभाव छे, अनंत अव्याबाध सुखने टालवानो वेदनीय कर्मनो स्वभाव छे, सम्यक्त्व तथा चारित्रने टा- लवानो मोहनीय कर्मनो स्वभाव छे, अक्षय स्थि- तिने टालवानो आयुःकर्मनो स्वभाव छे, शुद्ध अवगाहनाने टालवानो नाम कर्मनो स्वभाव छे,

मेरी विनती सुनो कर ध्यान

चहुं आश्रम में गृहस्थ धर्म है सब से श्रेष्ट महान् ॥ मेरी० ॥
पुरुष तो है सो घरकी शोभा, उनकी तिरिया जान।
तिय की शोभा पतिव्रत धर्म है रक्षा करै भगवान ॥ मेरी० ॥
दोनों की शोभा परस्पर प्रीति पानी दूध समान।
जिस घर में ये दोनों खुश है वह घर स्वर्ग समान ॥ मेरी० ॥
मुख की शोभा मीठे वचन है हाथ की शोभा दान।
दान की शोभा पात्र हो अच्छा कह गये पुरुष महान् । मेरी०॥
देह की शोभा परोपकार है धर्म उसका जो जान।
धर्म की शोभा दया, अहिंसा सबमें यही प्रधान ॥ मेरी० ॥

स्त्रियों के आभूषण।

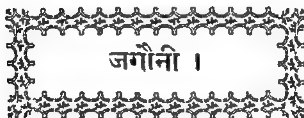
भला ओढ़ोरी सुहागिन पतिव्रत की चूनरी। मलमल विद्या की बनवाओ, रंगत बुद्धि की रंगवाओ, गोटा गोखरू ज्ञान लगाओ, बूटे सत् शास्त्र अनुसार, जगत् में चमके चूनरी ॥ १ ॥ मिस्सी मीठें

रूप (ठिइ के०) स्थितिः, एटले स्थितिबंध कहेवाय.

३ ते मोदक कोइ मीठो होय छे, कोइ करुवो होय छे, अने कोइ तीखो होय छे, तेमज कोइ मोदकनो एकठाणीयो रस होय छे, कोइकनो बे-ठाणीयो रस होय छे, इत्यादि अनेक प्रकारे अल्प विशेषत्व होय छे, तेम कोइ कर्मनो शुभ तीव्र, मंद, विपाक होय छे, अने कोइ कर्मनो अशुभ, तीव्र, मंद विपाक होय छे. जेम शाता-वेदनीयादिक कर्ममां कोइकनो शुभ रस अल्प होय, अने कोइकनो शुभ रस घणो होय, तेने त्रीजो (अणुभागो रसो णेउं के०) अणुभागो रसो ज्ञेयः, एटले अणुभागबंध ते कर्मनो रस-रूप जाणवो.

ते मोदक कोइक अल्प दलपरिमाणथी उ-त्पन्न थयेलो होय छे, कोइ बहु दलथी उत्पन्न

बचन उचारो, टिकुली परोपकार की धारो, पति की सेवा करो हरबार, सोहाग की ओढो चूनरी ॥ २ ॥ घूँघट चतुराई को घालो, लाजकी नथ को नाक में डालो बाजु बन्द दया का बाधो, हँसुली सत्य की कंठ में धारो, जीव से प्यारी चनरी ॥ ३ ॥ हार ज्ञान का हियमें पेन्हो माला धीरजता की धारो, घरमें हिल मिल सब से रहना गुरु जन सेवा अगूठी गहना असीस की ओढो चूनरी ॥ ॥ ४ ॥ पहु चो दया धर्म चित धरना वेरा मान बडों का करना, गजरा सबका हुक्म मानना, भलाइ की ओढो चूनरी ॥ ५ ॥



जागोरी जैन बहिनो, बहुत देर होगई।

अबभी उठो सुशीला बहिनो, खूब मागयी ॥

मसार एक चमन है और पक्षी तुम हुइ ॥

जिस धम (भारतको) हाद सरपैहै, कुछ डर नहीं नहीं ।

हिल मिलके भगिनी साथ में डिगना कभी नहीं ॥

हिंसा असत्य चोरी में लगना कभी नहीं ॥

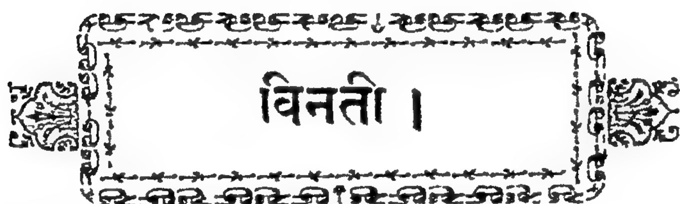
तृष्णा विषयके जालमें फँसना कभी नहीं ॥

गाथा ३० मीना छूटा शब्दना अर्थ.

पड–पाटो.
पडिहार–प्रतिहार, पोळीओ.
असि–खड्ग, तरवार.
मद्य–मदिरा.
हड–हड.
चित्त–चितारो.
कुलाल–कुंभार.
भंडगारीणं–भंडारी.
जह–जेम.
एएसिं–ए (वस्तुओ).
भावा–स्वभाव
कम्माणवि–कर्मनो पण.
जाण–समज.
तह–तेमज.
भावा–स्वभावा.

विस्तारार्थः–(पडपडिहारसिमज्जहडचित्तकुलालभंडगारीणं के०) पटप्रतिहारासिमद्यहडिचित्रककुलालभांडगारीणां, एटले पाटो १, प्रतिहार २, खड्ग ३, मदिरा ४, हड ५, चितारो ६, कुंभार ७ अने भंडारी ८, (एएसि के०) एतेषां, एटले वस्तुउना (जह के०) यथा, एटले जे प्रमाणे (भावा के०) भावाः, एटले भावो छे. (तह के०) तथा, ते प्रमाणे (कम्माणवि के०) कर्मणा-

जीवों की रक्षा करके, सत्य बोलना सभी।
चोरी से हटके ब्रह्मचर्य पालना सभी॥
अपने से बड़ों को सदा मानों पिता धर्मी॥
एक पतिको छोड़ करके बहिनो भ्राता सुता सभी॥
दिलको बनाके ऐसा जो, जिनदेव ध्यावेंगी॥
क्रम से उतर के पार बहिन चैन पाओगी॥ २॥



एक विनती सुनो हमारी, हम अबला है सुता तुम्हारी।
तुम ही माता पिता हमारे, ममता करके पालन हारे॥
हमको जन्म आपने दिया, भली भांति है पालन किया।
हमें धर्म से वंचित किया, अथवा नर से पशु कर दिया॥
भूषण तो बहु मूल्य पिन्हाये, लेकिन अक्षर दो न सिखाये।
हा! विदुषी जो हम हो पाती, कुलकी कीर्ति अवश्य बढ़ाती॥
हम गृह देवी भी कहलाती, इस दुनियाँ को स्वर्ग बनातीं।

नावरणीय कर्म ते जीवना अनंत ज्ञानगुणने रोके छे.

बीजुं दर्शनावरणीय कर्म, ते पोलीया (छडी-दार) समान छे. जेम कोइ एक जीव राजानुं द-र्शन करवा वांछे, पण पोलीयो दर्शन करवा न आपे, तेम जीवनो सामान्यपणे सर्व वस्तु देख-वानो स्वन्नाव छे, पण दर्शनावरणीय कर्मना उदयथी न देखे, ते दर्शनावरणीय कर्म चार प्रकारे छे. १ चक्षुर्दर्शनावरणीय, २ अचक्षुर्दर्शना वरणीय, ३ अवधिदर्शनावरणीय, अने ४ केवल-दर्शनावरणीय. तथा ए कर्मना उदयथी १ निद्रा, २ निद्रानिद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, अने ५ थीणद्धी, ए पांच प्रकारनी निद्रा पण होय. ए सर्व मली नव प्रकारनां दर्शनावरणीय कर्म जीवनो अनंत दर्शनगुण रोक्यो छे.

प्रार्थना ।

गज़ल ।

विद्या का हम सबों को पिता दान दीजिये ।
हमारी इस विनय पै ज़रा गौर कीजिये ॥
वर्त्तमानमें जो हालतें हमारी हो रहीं ।
तुम से छिपी नहीं जरा तो ध्यान दीजिये ॥ १ ॥
निर्बल पिता हम होरहे हैं ज्ञान के बिना ।
दे ज्ञान औषधि से हमें चङ्गा कीजिये ॥ २ ॥
भारत की भूमि पर हजारों सैकड़ों सती ।
विद्या के बलसे थीं पिता यह सोच कीजिये ॥ ३ ॥
इक मातके उदर में पिता भाई और हम ।
घरमें ही जन्मे हैं इसे अब सोच लीजिये ॥ ४ ॥
फिर भाइयों की शिक्षा में हो इस क़दर जतन ।
हम मूर्ख होके रोयें ज़रा ध्यान दीजिये ॥ ५ ॥
अब विद्या भवन खोल पिता शिक्षा देव तुम ।
गिरी जैन जातिका पिता उद्धार कीजिये ॥ ६ ॥
आभूषणों में द्रव्य को तुम खर्च करते क्यों ।
उस द्रव्य से पिता जी शिक्षा हमको दीजिये ॥ ७ ॥

पांचमुं आयुः कर्म, ते हरू समान छे. जेम हरूमां पडेलो प्राणी नीकलवा वांछे, पण राजाना हुकम विना नीकली न शके, तेम ए आयुः कर्म पण यद्यपि सुखदुःख कांइ पण पोते उपजावतुं नथी, तथापि चार गतिने विषे सुखदुःखनुं आधारभूत जे शरीर, तेमांहे हरूनी पेरे जीवने राखे छे. जेम अशुभ नरकादिकनी गतिनुं आउखुं भोगवतो छतो जीव त्यांथी नीकलवा वांछे, पण आयु पूर्ण कीधा विना नीकली न शके ए कर्मनो जीवना अविनाशी गुण रोकवानो स्वभाव छे.

छठुं नाम कर्म, ते चितारा समान छे, जेम निपुण चित्रकार सारां त[illegible]था नरसां, काला धोला रंगनां, नानां मोटां अनेक प्रकारनां [illegible]ां रूप आलेखे, तेम ए कर्मना उदयथी जीव पण चित्ररूप [illegible]थी उ- संसारमां देव तथा मनुष्यादिकनां रूडां रूप

विस्तारार्थः-(नाणे के०) ज्ञाने, एटले ज्ञानावरणीय, (अ के०) च, एटले अने (दंसणावरणे के०) दर्शनावरणे, एटले दर्शनावरणीय, (वेअणिए के०) वेदनीये, एटले वेदनीय (चेव के०) चैव, एटले निश्चे (अंतराए के०) अंतराये एटले अंतराय, ए चारे कर्ममां (अयराणं तीसं कोमाकोमी के०) अतराणां त्रयस्त्रिंशत्कोटिकोट्यः, एटले त्रीश कोमाकोमी, सागरोपम (ठिइ के०) स्थितिः, एटले स्थिति (उक्कोसा के०) उत्कृष्टा, एटले उत्कृष्टी जाणवी. अने (सत्तरि कोमाकोमी के०) सप्ततिः कोटिकोट्यः, एटले सीत्तेर कोमाकोमी सागरोपम (मोहणिए के०) मोहनीये, एटले मोहनीय कर्मने विषे स्थिति जाणवी. तथा वीस नामगोएसु के०) विंशतिर्नामगोत्रयोः, एटले वीश कोमाकोमी सागरोपम नामकर्म अने गोत्रकर्मने विषे स्थिति जाणवी. तथा (तित्तीसं

राशिथी अनंत गुणा अने सिद्धना जीवोनी राशिने अनंतमे भागे एटले परमाणुए निष्पन्न कर्मस्कंध समय समय प्रत्ये ग्रहण करे छे. ते दलीयांने विषे परमाणु दीठ कषायना वशथकी सर्व जीवनी राशिथी अनंत गुणा रस विभागना परिछेद होय. ते रस तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम तथा मंद, मंदतर, मंदतमादिक अनेक प्रकारे होय. तेमां अशुभ ब्याशी पापप्रकृतिनो तीव्र रस संक्लेश परिणामे करी बंधाय, अने शुभ बेंतालीश पुण्यप्रकृतिनो तीव्र रस विशुद्धिए करी बंधाय, तथा मंद रसनो तेथकी विपरीत होय. ते आवी रीते–शुभ प्रकृतिनो मंद रस संक्लेश परिणामे करी बंधाय, अने अशुभ प्रकृतिनो मंद रस विशुद्धिए करी बंधाय.

हवे प्रकृतिना एकठाणीया प्रमुख रस जेणे करी बंधाय, ते कहे छे–अशुभ प्रकृतिनो चोठा-

णीयो रस अनंतानुबंधी या कषाये करी बंधाय, त्रिठाणीयो रस अप्रत्याख्यानी या कषाये करी बंधाय, बेठाणीयो रस प्रत्याख्यानी या कषाये करी बंधाय, अने एकठाणीयो रस संज्वलन कषाये करी बंधाय, तथा शुभ प्रकृतिनो रस तेथकी विपरीतपणे जाणवो ते आवी रीते–शुभ प्रकृतिनो चोठाणीयो रस संज्वलन कषाये करी बंधाय, तथा त्रिठाणीयो रस प्रत्याख्यानावरण अने अप्रत्याख्यानावरण कषाये करी बंधाय, बेठाणीयो रस अनंतानुबंधीया कषाये करी बंधाय, अने एकठाणीयो रस तो शुभ प्रकृतिनो छेज नहीं, अंतरायनी पांच प्रकृति देश घाती छे, तथा एक केवलज्ञानावरण विना बाकीनी चार प्रकृति ज्ञानावरणीयनी तथा एक केवलदर्शनावरण विना त्रण प्रकृति दर्शनावरणीयनी तथा संज्वलन कषायनी चार प्रकृति,

संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य ॥ कालो अ अंतर भाग, भावे अप्पाबहू चेव ॥ ४३ ॥

गाथा ४३ मीना छूटा शब्दना अर्थ.

संतपय—छता पदनी.
परूवणया—प्ररूपणाद्वार.
दव्वपमाणं—द्रव्यप्रमाणद्वार
खित्त—क्षेत्रद्वार.
फुसणा—स्पर्शनाद्वार.
च—अने.
कालो—कालद्वार.
य—अने.
अंतर—अंतरद्वार.
भाग—भागद्वार.
भावे—भावद्वार.
अप्पाबहु—अल्पबहुत्वदार.
चेव—निश्चे.

विस्तारार्थः—मोक्षने विषे छता पदनी प्ररू·[illegible]ा ते गति प्रमुख मार्गणाद्वारने विषे सिद्धनी त्तानुं निरूपण करवुं, एटले चौद मार्गणामां सिद्धपद कइ मार्गणाए छे? एवी प्ररूपणा करवी, ते पहेलुं (संतपयपरूवणया के०) सत्पद·

प्ररूपणता, एटले ठता पदनी प्ररूपणानुं द्वार. सिद्धनां जीवद्रव्यनुं प्रमाण करवुं, एटले सिद्धना जीवद्रव्य केटलां छे? ते विचारवुं, ए बीजुं (दव्वपमाण के०) द्रव्यप्रमाण, एटले द्रव्यप्रमाणद्वार (च के०) वली सिद्धने अवगाहना क्षेत्र केटलुं छे? ते विचारवुं, ए त्रीजुं (खित्त के०) क्षेत्र, एटले क्षेत्रद्वार केटला आकाशप्रदेशने सिद्धना जीव फरसे? एम जे विचारवुं, ते चोथुं (फुसणा के०) स्पर्शना, एटले स्पर्शनाद्वार अहीं जे क्षेत्र अवगाहीने रहे, ते अवगाहना, तेने त्यां अवगाही रहेता जेटलुं क्षेत्र फरसे, ते स्पर्शना जाणवी जेम परमाणुने एक प्रदेश अवगाहनारूप क्षेत्रने सात प्रदेशनी स्पर्शना होय (य के०) च, अने काळ आश्रयी सिद्धने सादि अनंत रूप कह्युं, ते पांचमुं (कालो के०) काल, एटले काल द्वार (अ के०) च, तथा सिद्धना जीवने